सांस्कृतिक कहानियाँ
भाग ८
स्वामीनाथ
सुदर्शनसिंह चक्र

सांस्कृतिक कहानियाँ

[भाग ८]

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

प्रकाशन विभाग
श्रीकृष्ण - जन्मस्थान - सेवासंघ
मथुरा - २८१००१ (उ० प्र०)

प्रकाशक	श्रीकृष्ण जन्मस्थान-सेवासंघ
प्रकाशन-तिथि	गङ्गा दशहरा, वि० सं० २०३५ १६ जून, १९७८
प्रथम संस्करण	५००० प्रतियाँ
मुद्रक	राधा प्रेस, गान्धीनगर, दिल्ली-११००३१

SANSKRITIK KAHANIYAN

—Sudarshan Singh 'Chakra'

मूल्य— दो रुपया पचास पैसे

प्राक्कथन

अनेक वर्षों तक 'कल्याण' (गोरखपुर) में मेरी कहानियाँ निकलती रहीं हैं। बहुत लोगोंका आग्रह था कि इन्हें संकलित कर दिया जाय। यह संकलन अब हो सका है और श्रीकृष्ण - जन्मस्थान प्रकाशनसे 'सांस्कृतिक कहानियाँ' नामसे अनेक भागोंमें निकल रहा है।

इस संग्रहमें 'कल्याण' में निकली कहानियाँ तो हैं ही, अन्यत्र छपी कहानियाँ भी हैं।

मैंने कहानी लिखना ही प्रारम्भ किया किसी तथ्यको समझानेके लिए। धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक बिषयोंमें लेखोंके द्वारा जिन्हें समझाया जाता है, उन्हें मैंने कहानी द्वारा समझानेका प्रयत्न किया है।

इतिहास, भूगोल अथवा आधिदैवत जगतका भी वर्णन जो दिया गया है, यथासम्भव स्पष्ट है। इनसे भीं पाठकको परिचित कराया गया है।

घटनाएँ और पात्र सभी कल्पित नहीं भी हैं—तो भी उनको सत्य बतलानेका प्रयत्न नहीं हैं। अतः घटनाओं तथा नामोंके पीछे मत पड़ें, कहानीमें प्रतिपादित तथ्यको ग्रहण करें।

कलाके लिए नहीं, सत्प्रेरणाके लिए लिखी गयी इन कहानियोंसे पाठकको लाभ हो तो मेरा प्रयत्न सफल है; भले कहानी-कला इनमें न मिलती हो।

अच्छा होगा कि इन कहानियोंके तीन भाग निकल जानेके बाद आप इन्हें मँगाया करें, इससे डाक-व्यय कम लगेगा। नहीं तो आजकल डाक-व्यय पुस्तकके मूल्यसे अधिक हो गया है। अग्रिम भेजते समय आप जैसा लिखेंगे वैसी व्यवस्था कर दी जायगी।

श्रीकृष्ण जन्मस्थान, **—'चक्र'**

मथुरा

अनुक्रमणिका

धर्मो धारयति प्रजाः

आजकी बात नहीं है। बात है उस समयकी, जब पृथ्वीकी केन्द्रच्युति हुई, अर्थात् आजसे कई लाख वर्ष पूर्वकी। केन्द्रच्युतसे पूर्व उत्तर तथा दक्षिणके दोनों प्रदेशोंमें मनुष्य सुखपूर्वक रहते थे। आजके समान वहाँ हिमका साम्राज्य नहीं था, यह बात अब भौतिक विज्ञानके भू-तत्त्वज्ञ तथा प्राणिशास्त्रके ज्ञाताओंने स्वीकार कर ली है।

पृथ्वीके दक्षिणी ध्रुवप्रदेशमें बहुत बड़ा महाद्वीप था अन्तःकारिक। महाद्वीप तो वह आज भी है। उसे अब आप अण्टार्कटिकाके नामसे जानते हैं। उसके एक महानगरकी चर्चा है यह। उस महानगरको अन्तःलासिक कहते थे उस समय।

पृथ्वीका यह दक्षिण-ध्रुवीय प्रदेश अब भी अनेक अद्भुत रहस्य रखता है। उसकी अनेक प्राकृतिक विशेषताएँ उस समय भी वैसी ही थीं, जैसी आज हैं। वहाँ जब इस युगके अन्वेषकोंका प्रथम दल गया तो उसने पाया कि प्रत्येक वस्तुमें वहाँ दाहिने घूमनेकी विचित्र प्रवृत्ति है। आँधी दक्षिणावर्त चलती है। वहाँके पक्षी बायेंसे दाहिने मण्डलाकार चलते हैं। मनुष्य प्रयत्न करता और समझता है कि वह सीधे या बायें मुड़ रहा है, किंतु अन्तमें पाता है कि वह दाहिने मण्डलाकार घूमता हुआ वहीं पहुँच गया,

जहाँसे चला था। अब तो दिशादर्शक यन्त्रपर निर्भर करके ही वहाँ चलना होता है।

प्रकृतिमें जो यह सहज प्रवृत्ति वहाँ है, उसका परिणाम यह हुआ था कि पूरे अन्त:कारिक महाद्वीपमें नगर गोलाकार बसे थे। उनके मार्ग मण्डलाकार थे। भवन अर्धगोलाकार गुम्बदके समान बनते थे और उनका बाहरी घेरा ही नहीं, मुख्य कक्ष भी गोल होते थे। यदि बहुत ही थोड़ी दूर न जाना हो तो व्यक्ति अपने गन्तव्यतक दक्षिणसे चलकर मण्डलाकार घूमते हुए ही जाते थे। इसके लिये उन्हें कितना अधिक चलना पड़ता है, इसपर ध्यान देनेकी किसीको कभी आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई।

प्रकृतिमें यह जो दाहिने घुमानेकी शक्ति है वहाँ, वह सीधे मनको प्रभावित करती है। इसीलिये मनुष्य न चाहते हुए भी दाहिने अनजानमें घूमता जाता है। यह शक्ति मनपर अनेक और प्रभाव डालती है। मन बहुत कम बाहरी दृश्यों तथा कार्योंमें रस ले पाता है। स्वभावसे चुपचाप बैठने, अन्तर्मुख होनेकी प्रवृत्ति वहाँ हैं। यह बात दूसरी है कि आजका अत्यन्त बहिर्मुख मनुष्य बाह्यशोधका उद्देश्य लेकर जब वहाँ पहुँचता है, तब वह इस अन्तर्मुख करनेवाली शक्तिका अनुभव केवल इस रूपमें कर पाता है कि 'प्रकृति वहाँ शीघ्र थका देती है। व्यक्ति वहाँ बहुत कम सक्रिय रह पाता है।'

उस समय पूरी पृथ्वीमें एक ही धर्म था—'सन्तान धर्म।' दूसरे किसी सम्प्रदायने तबतक जन्म ही नहीं लिया था। सनातन धर्म तो सार्वभौम एवं नित्य शाश्वतधर्म है।

अतः उसमें सब देशोंके लिये, सब युगोंके लिये, सब प्रकार-की रुचि तथा शक्ति-सामर्थ्यके लोगोंके लिये साधन हैं। उस युगमें उस अन्तःकारिक महाद्वीपके लोग भी अपनी-अपनी रुचिके साधन करते थे।

जहाँ प्रकृति स्वयं अन्तर्मुख होनेमें सहायक है, मनुष्य एकाग्रता प्राप्त करनेके अनेक साधनोंको जीवनमें उतार ले—इसमें आश्चर्यकी बात नहीं है। महाद्वीपमें बहुत कम कोलाहल प्रत्येक नगरमें था। पथोंपर अत्यावश्यक होनेपर ही कोई निकलता था। जीवन बहुत सादा, बहुत परिग्रह-रहित। जीवनधारणके लिये आवश्यक क्रियामात्र ही मनुष्यकी कर्मशीलता रह गयी थी।

कोई श्रवण बंद किये, दोनों कानोंमें गुटिका लगाये बैठा है। अनहद नादके माधुर्यके सम्मुख जगत्‌का सब रस उसे नीरस लगता है। किसीने जिह्वाका दोहन-छेदन युवावस्थाके प्रारम्भमें ही सम्पन्न कर लिया। वह रसनाको कण्ठछिद्रमें दबाये गगनगुफासे झरते रसका ही आस्वादन करता है। किसीको स्पर्शयोग सिद्ध है और किसीको गन्ध-योग। इच्छानुसार मनमें ही अभीष्ट रूप-दर्शनकी सामर्थ्य भी अनेकोंने प्राप्त कर ली थी।

कोई-न-कोई साधना अन्तःकारिक महाद्वीपका बालक माताकी गोदसे ही सीखना प्रारम्भ कर लेता था। एकाग्रता, अन्तर्लीनता और मौन—ये वहाँके स्वभावमें आ गये थे।

इस स्वभावका एक विचित्र परिणाम भी हुआ था। लोगोंमें बोलनेकी प्रवृत्ति नहीं थी तो सुननेकी भी प्रायः नहीं रह गयी थी। वेदज्ञ ब्राह्मण भारतसे बाहर जाते नहीं

थे। साधना और आराधनाको शास्त्रीय आधार कम ही प्राप्त था। केवल प्रकृतिदत्त अन्तर्मुखता तथा एक प्रकारका आलस्य भी था किसी क्रियाको कम करनेमें।

पूरे महाद्वीपके अन्तःलासिक नगरमें एक व्यक्ति इस सबका अपवाद था। वह था अविनीत वर्मा। पता नहीं क्या बात थी कि वहाँकी प्रकृतिका प्रभाव उसे स्पर्श नहीं कर पाता था। वह मार्गोंको छोड़कर सीधे चल देता था। वाम दिशामें मार्गपर चल देना भी उसे अस्वाभाविक नहीं लगता था। पथपर उसे प्रायः इधर-उधर दौड़ते-भागते देखा जा सकता था। बहुत कम वह कहीं स्थिर बैठ पाता था। अन्तर्मुख होकर ध्यान करनेका प्रयत्न करते भी उसे पाया नहीं गया।

'मेरा पशु पङ्कमें फँस गया है। मैं एकाकी उसका उद्धार नहीं कर पाऊँगा, सहायताकी अपेक्षा है।' ऐसे अवसरपर व्यक्ति दूसरेसे प्रार्थना करनेको विवश हो ही जाता है।

'मेरे संध्याकालीन कृत्यका समय है। नियमको भङ्ग करनेमें असमर्थ हूँ। आप अविनीत वर्माको ढूंढ़ लें। आप इसे नियमनिष्ठा भले न मानें, किंतु आलस्य मत कहिये। वहाँ कोई आलस्यका आदर नहीं करता था। किंतु अपने नियमको तोड़कर कुछ करनेका उत्साह भी किसीमें नहीं था।

'मैं स्वयं अस्वस्थ हूँ। बच्चा बहुत कष्टमें है। चिकित्सकको बुला देनेका कष्ट करेंगे आप?' एक रुग्णव्यक्ति पड़ोसीसे प्रार्थना करनेके अतिरिक्त और क्या करे?

'मैं अर्चनमें बैठने ही जा रहा हूँ। आराधनामें व्यतिक्रम अभीष्ट नहीं है। आप पथपर दृष्टि रक्खें। अविनीत वर्मा आता ही होगा इधरसे।' उत्तर अवश्य अप्रिय है; किंतु प्रार्थना करनेवाला जानता है कि इस परिस्थितिमें वह स्वयं होता तो यही उत्तर वह भी देता।

अविनीत वर्मा ही आश्रय है ऐसे विपत्तिमें पड़े लोगोंका। वह किसीके लिये औषधि लाने दौड़ रहा है और किसीके लिये चिकित्सक बुलाने। किसीका खोया पशु ढूंढ़ने उसे जाना है अथवा किसीके प्रियजनतक संदेश पहुँचा देना है। उसे किसीकी सहायतामें आपत्ति नहीं है, यदि उसके पास अवकाश हो।

'मेरे लिये आप शाल्यन्न ला देंगे?' कोई भी कह सकता है अविनीत वर्मासे।

'नहीं! तुम अपने लिये यह उद्योग स्वयं करो। मुझे दूसरा आवश्यक कार्य है।' यह उत्तर मिलनेकी सम्भावना सदा रहती है। वह अविनीत वर्मा नामसे ही नहीं है। विनम्रता, बनावट, किसीका संकोच उसमें नामको नहीं है। नगरके प्रशासक अथवा कर्मनियामकको भी किसी भी नन्हें कार्यतकके लिये वह अस्वीकार कर दे सकता है। वह कार्य सबके कर देता है, अत्यन्त उपेक्षणीय पशुतककी सेवा करने बैठ जाता है; किंतु करेगा वही कार्य, जो उसे ठीक लगेगा। उसको जो कार्य जब महत्त्वपूर्ण लगे, तब वही महत्त्वपूर्ण है।

'धन्यवाद!' कभी कोई कह तो देखे अविनीत वर्माको। ऐसी झिड़की सुननी पड़ेगी उसे जो, वर्षों स्मरण रहे। उसे

किसी कार्यके उपलक्षमें दो घूँट जल भी भेंट नहीं किया जा सकता। अपने श्रमसे उपार्जित वस्तुके अतिरिक्त वह किसीसे कुछ लेता नहीं। कोई उपकृत करनेका साहस करे, यह उसका अपमान करनेका प्रयास ही तो है।

सबके कार्य करके, सबकी सहायता करके, सबसे भिन्न रीतिसे रहनेवाला यह अविनीत वर्मा बड़ा रूक्ष पुरुष है। उसके नेत्रोंमें अश्रु नहीं आते किसीकी मृत्यु देखकर; और सब कहते हैं कि वह सांसारिक पुरुष है। कोई अन्तर्मुख होनेका साधन उसने नहीं अपनाया। उससे सेवा चाहे जितनी लोग ले लें, समाजमें तिरस्कृत—उपेक्षणीय ही है वह। कौन जाने उसकी रूक्षता इस उपेक्षासे ही उत्पन्न हुई हो।

यही अविनीत वर्मा एक रात्रि अचानक चौंककर उठा। वह बहुत प्रयत्न करके, दीर्घकालके श्रमके पश्चात् अपने गोल भवनका द्वार खोलनेमें समर्थ हुआ था। बाहर उसने जो कुछ देखा, उसे देखकर फूट-फूटकर रोया; किंतु उस दिन उसके अश्रु कपोलोंपर आनेसे पूर्व ही जम जाते थे। कोई उसका रुदन देखनेवाला नहीं था उस दिन।

अविनीत वर्माको अपने आसपास कुछ नहीं दीखता था। कोई भवन, कोई मार्ग अथवा कोई जीवन-चिन्ह कहीं नहीं था। पृथ्वीकी केन्द्रच्युत हुई है, इसे कौन बतलाता। सम्पूर्ण सृष्टिपर श्वेत अन्धकार छाया दीखता था। आपने जो घोर कृष्ण अन्धकार जाना—देखा है, उससे अकल्पनीय भयानक था वह श्वेत अन्धकार।

पता नहीं, आपने कभी हिमपात देखा है या नहीं।

वह ध्रुवीय प्रदेशका हिमपात, उसमें अपना फैलाया हाथतक हवामें घुल गया जान पड़ता है। व्यक्ति अपनेको ही नहीं देख सकता तो आस-पास क्या है, इसे कैसे देखेगा। चारों ओर हिमराशि—जहाँ दृष्टि जाय, केवल श्वेत हिम।

जादूका प्रदेश लगता है वह हिम-प्रदेश। गगनमें भरे हिमकणोंपर सूर्यकी किरणोंका वक्रीभवन अद्भुत दृश्य दिखलाता है। आप खड़े हैं भूमिपर और साथका व्यक्ति आपको गगनमें उलटा लटका दीखता है। आपके देखते-देखते वह वायुमें घुलकर अदृश्य हो जाता है, जब कि उसका हाथ आपके हाथमें है। आपको अपनेसे थोड़ी दूरी-पर एक नगर दीखता है। उसके वृक्ष, भवन, मार्ग तथा उस मार्गपर चलते वाहन, दौड़ते लोग—सब दीखते हैं। लगता है कि आप घंटेभरसे कममें वहाँ पहुँच सकते हैं। लेकिन सत्य यह है कि वह नगर वहाँसे कई सहस्र मील दूर जापान या आस्ट्रेलियामें है। यह भी सम्भव है कि वह नगर सामने भूमिपर न दीखकर आपको अपने मस्तक-पर आकाशमें उलटा लटकता दीखे।

एक रात्रिमें वह पूरा अन्त:कारिक महाद्वीप आजके अण्टार्कटिकाके जादू भरे हिमप्रदेशमें बदल गया था। पूरी रात्रिमें कितना हिमपात हुआ, जाननेका कोई साधन नहीं था। अविनीत वर्माने पद बढ़ाये तो वह कटितक कोमल हिममें डूब गया। कठिनाईसे निकला; किंतु अब वह भवनका द्वार भी हिमके गर्भमें अदृश्य हो चुका था, जिसमें-से अविनीत वर्मा अभी बाहर आया था।

वह सिर पकड़कर बैठ गया और रोता रहा। रुदन

रुका ; कोई कबतक अकेले रोता रह सकता है। कुछ समझमें नहीं आता था कि क्या हुआ है। कुछ भी कर पानेका उपाय नहीं था। जहाँ पद बढ़ाते ही हिम-समाधि मिल जानेकी आशंका हो, कोई कर भी क्या सकता है। इतना सब था, किंतु अविनीत वर्माको अपने शरीरकी सुधि नहीं थी। उन्हें न शीत लगनेका बोध था और न अपने रहने, भोजन-जल पीनेकी चिन्ताने स्पर्श किया था।

'यह पूरा महादेश धार्मिक था। धर्मका जो धारण करता है, धर्म उसका धारण करता है।' किसी समय मातासे सुने वचन स्मृतिमें आये और मनमें प्रश्न जागा—'धर्मने यहाँके धार्मिक लोगोंका धारण-रक्षण क्यों नहीं किया ? कौन है इस धर्म-व्यवस्थाका नियामक-संचालक ?'

संकल्प मनमें उठा और लगा कि शरीरको कुछ हो गया है। बहुत ही हलका लगा देह, जैसे वह गगनमें ऊपर उठ रहा हो। अविनीत वर्माने नेत्र बंद कर लिये। उन्होंने अल्प क्षणोंमें ही उस श्वेत अन्धकारके प्रदेशमें जो कुछ देखा था, उसके कारण कुछ भी होना उन्हें आश्चर्यजनक नहीं लग सकता था।

'पधारो, महानुभाव !' किसीका गम्भीर स्वर सुनायी पड़ा तो अविनीत वर्माने नेत्र खोल दिये। वे आश्चर्यसे चारों ओर देखने लगे। कभी न तो उन्होंने वैसा स्थान देखा था, न वैसे लोगोंका वर्णन सुना था, जैसे उन्हें वहाँ दीख रहे थे।

'यह धरा नहीं है। आप इस समय यमलोकमें हैं। आपने मनुष्यके धर्माधर्मके विधायक धर्मराजका साक्षात्कार

करनेकी इच्छा की थी।' चित्रगुप्तने उन्हें चकित देखकर तथ्यसे अवगत किया।

'तो मैं मर चुका हूँ।' अविनीत वर्माने कोई व्याकुलता प्रकट नहीं की। 'उस हिमप्रदेशमें जीवित एकाकी भटकने-से यह अधिक उत्तम है।'

'आप अब भी अपने भौतिक देहमें ही हैं।' चित्रगुप्तने फिर बतलाया। 'केवल आपकी जिज्ञासाने आपको यहाँ पहुँचा दिया है। आपका पार्थिव देह तो पृथ्वीपर जो केन्द्र-च्युतिकी घटना हुई, उसके संयोगोंमें पड़कर तथा आपके शुभाचरणकी शक्तिसे सिद्ध-देह हो गया है। आप अब अमर रहेंगे मर्त्यभूमिमें रहकर भी। लेकिन आपको तो अभी धर्मराजके दर्शन करने हैं।'

'अन्तःकारिक महाद्वीपके लोग धर्मात्मा थे।' अविनीत वर्माने धर्मराजको भी केवल हाथ जोड़कर शिष्टाचारमात्र-के लिये प्रणाम किया और अपने प्रश्नपर आ गये—'आप धर्मके निर्णायक हैं। आप बतायेंगे कि धर्मने उनका धारण क्यों नहीं किया? वह पूरा महादेश ध्वस्त क्यों हो गया?'

'स्वेच्छाचरणका नाम धर्म नहीं है, भद्र! भले वह आचरण अन्तर्मुखताके साधनके रूपमें ही क्यों न किया जाय।' धर्मराजने गम्भीर बनकर उत्तर दिया। 'धर्म वह है, जो वेद-शास्त्रविहित है।'

'चोदनालक्षणो धर्मः' अविनीत वर्माको यह स्मरण आ गया। लेकिन वे यह नहीं समझ पा रहे थे कि अन्तर्मुखता ही जिनका जीवन-लक्ष्य था, वे धार्मिक क्यों

नहीं माने जाने चाहिये। उनके चित्तकी स्थिति धर्मराजसे अज्ञात तो थी नहीं। अतः वे बोले—'जो गृहस्थ हैं, वर्णाश्रमविहित कर्मका सम्यक् निर्वाह उनका कर्तव्य है। विरक्त योगीके लिये उपदिष्ट केवल अन्तर्मुखताके साधन उनके लिये परधर्म तथा विधर्म बन गये, जब उनके कारण कर्तव्य-निर्वाहमें प्रमाद होने लगा। परधर्म और विधर्म अधर्मके ही रूप हैं, यह आपको ज्ञात है।'

'लेकिन वे इन्द्रियाराम तो नहीं थे।' अविनीत वर्माने कहा।

'वे साधक थे, यह कौन अस्वीकार करता है?' धर्मराज बोले। 'उनका साधन निष्फल नहीं हो सकता और जीव अमर है। उन्होंने अपने स्थूल देहके कर्तव्य तथा उसके धर्म-निर्वाहकी उपेक्षा की साधनको उपलक्ष बनाकर, अतः स्थूल देह उनसे छीन लिये गये।'

अब अविनीत वर्माके पास कहनेको कुछ था ही नहीं। आत्मा अमर है और साधन जन्मान्तरमें भी चलते हैं, यह वे जानते थे।

सुना है कि अब अविनीत वर्मा अपने सिद्ध-देहसे हिमालयके अदृश्य रहनेवाले कारक पुरुषोंके साथ रहते हैं। सिद्धोंके समाजमें उनका नाम अब अविनीतपाद अथवा अविनीतप्पा लिया जाता है।

—:०:—

ग्रह - शान्ति

'मनुष्य अपने कर्मका फल तो भोगेगा ही। हम केवल निमित्त हैं उसके कर्म-भोगके और उसमें हमारे लिये खिन्न होनेकी कोई बात नहीं है।' आकाशमें नहीं, देवलोकमें ग्रहोंके अधिदेवता एकत्र हुए थे। आकाशमें केवल आठ ग्रह एकत्र हो सकते हैं। राहु और केतु एक शरीरके ही दो भाग हैं और दोनों अमर हैं। वे एकत्र होकर पुनः एक न हो जायँ, इसलिये सृष्टिकर्ताने उन्हें समानान्तर स्थापित करके समान गति दे दी है। आधिदैवत जगत्में भी ग्रह आठ ही एकत्र होते हैं। सिररहित कबन्ध केतुकी वाणी अपने मुख राहुसे ही व्यक्त होती है।

'मनुष्य प्रमत्त हो गया है इन दिनों। अतः उसे अपने अपकर्मोंका फल भोगना चाहिये।' शनिदेव कुपित हैं, भूतलपर मनुकी संतति जब उनके पिता भगवान् भास्करकी उपेक्षा करने लगती है, मनुष्य जब संध्या तथा सूर्योपस्थान-से विमुख होकर नारायणसे पराङ्मुख होता है, शनि कुपित होते हैं। यह उनका स्वभाव है। सूर्य भगवान्के अतिरिक्त वे केवल देवगुरुका ही किञ्चित् संकोच करते हैं।

'कलिका कुप्रभाव मनुष्योंको श्रद्धा-विमुख बनाता है।'

बृहस्पति स्वभावसे दयालु हैं। उन्हें यह सोचकर ही खेद होता है कि धरा जो रत्नगर्भा है, अब अकालपीड़िता, संघर्षसंत्रस्ता, रोग-पीडिता होकर उत्तरोत्तर अभावग्रस्त होती जायगी। विश्वस्रष्टाकी महत्तम कृति मानव अब क्षुत्क्षाम, कंकाल-कलेवर, अशान्त भटकता फिरेगा।

'हम कर क्या सकते हैं ?' बुध जो बुद्धिके प्रेरक हैं, प्रसन्न नहीं थे। उनके स्वरमें भी खेद था—'हम शक्ति और प्रेरणा दे सकते हैं, किंतु मनुष्य आजकल ऐसी समस्त प्रेरणाओंको विकृत बना रहा है। वह अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंके दुरुपयोगपर उतर आया है।'

'देवताओंका मनुष्य अर्चन करे। उन्हें अपने यज्ञीय भागसे पुष्ट करे और देवता मनुष्योंको सुसम्पन्न, स्वस्थ, सुमङ्गलयोजित रक्खें, यह विधान ब्रह्माजीने बनाया था।' अकस्मात् ही देवराज इन्द्र आ गये थे उस सभामें। वे वज्रपाणि रुष्ट थे—'मनुष्यने यज्ञका त्याग कर दिया। पितृतर्पणसे उसने मुख मोड़ लिया। अब वह कुछ हवन-श्राद्ध करता भी है तो स्वार्थ-कलुषित होता है वह। सम्यक् विधि न सही, अल्पप्राण, अल्पशिक्षित नरका अज्ञान क्षमा किया जा सकता है ; किंतु जब उसमें सम्यक् श्रद्धा भी न हो, जब वह दान तथा पूजनके नामपर भी स्वजन, सेवक तथा अपने स्वार्थके पूर्ति-कर्ताओंका ही सत्कार करना चाहे, उसके कर्म सत्कर्म कहाँ बनते हैं ?'

'देवता और पितर हव्य-कव्यकी अप्राप्तिसे स्वतः दुर्बल हो रहे हैं।' देवराजने दो क्षण रुककर कहा। 'हमारे आशीर्वादकी मनुष्यको अपेक्षा नहीं रही है। वह अपने

बुद्धिबलसे ही सब कुछ प्राप्त कर लेना चाहता है। अतः आप सबका यह योग यदि धरापर आपत्तियोंका क्रम प्रारम्भ करता है तो इसमें न आपका दोष है और न देवताओंका।'

'युद्ध, अकाल, महामारी—बहुत दीर्घकालतक चलेगा यह प्रभाव।' सुरगुरुने दयापूर्वक कहा। 'अल्पप्राण आज-का अबोध मनुष्य आपकी कृपाका अधिकारी है। कलिके कल्मषसे दलित प्राणी आपके कोपके योग्य नहीं।'

'मैं कोई आदेश देने नहीं आया। आप सब यदि आपकी अर्चा धरापर हो अथवा आप कृपा करना चाहें, अपने कुप्रभावको सीमित कर सकते हैं।' देवराजने कहा। 'वैसे विपत्ति विश्वनियन्ताका वरदान है मनुष्यके लिये। उसे वह प्रमादसे सावधान करके श्रीहरिके सम्मुख करती है। मनुष्य भगवान्‌के अभिमुख हो, यही उसकी सबसे बड़ी सेवा है।'

'आप चाहते हैं कि मनुष्य भोगविवर्जित रहे? संगीत, कला, विनोद तथा विलास केवल सुरोंका स्वत्व बना रहे?' शुक्राचार्यने व्यंग किया।

'मैं आचार्यसे विवाद नहीं करूँगा। वैसे वैभव देकर मनुष्यको विषयोन्मुख कर देना उसका अहित करना है, यह मैं मानता हूँ। मनुष्य तो आज वैसे ही बहिर्मुख हो रहा है।' देवराजने अपनी बात समाप्त कर दी। 'मैं केवल एक प्रार्थना करने आया था। ब्रह्मावर्तके उस तरुण-की चर्चा अनेक बार आपने देवसभामें सुनी है। देवताओं, पितरोंकी ही नहीं, आप सबकी (ग्रहोंकी) वह सत्ता

मानता है, शक्ति मानता है और फिर भी सबकी उपेक्षा करता है। उसे विशेष रूपसे आप ध्यानमें रक्खेंगे।'

'जो आस्थाहीन हैं, उनपर दया की जा सकती है। वे अज्ञ अभी समझते ही नहीं; किंतु जो जानता है, आस्था रखता है, वह उपेक्षा करे— मैं देख लूंगा उसे।' क्रूर ग्रह मङ्गलके सहज अरुण नेत्र अंगार बन गये।

'वह आश्रम-वर्णविवर्जित एकाकी मानव लगता है कि देवराजके लिये आतंक बन गया है।' शुक्राचार्यने फिर व्यंग किया। 'किंतु वह न तपस्वी है और न शतक्रतु बननेकी सामर्थ्य है उसमें। धर्माचरणके कठोर नियमोंको उपेक्षाके समान ही वह अपने स्खलनोंको भी महत्त्व तो देता नहीं। ऐसी अवस्थामें उसका देवराज बिगाड़ भी क्या सकते हैं? कुसुमधन्वाकी वहाँ विजयका कोई अर्थ नहीं। वह इच्छा करे तो आज अमरावती उसकी होगी, यह आशंका हो गयी लगती है। अतः उसे संत्रस्त करनेको अब हम सब ग्रहगण इन्द्रकी आशाके आधार बने हैं।'

× × ×

'वत्स! तुम्हें विशेष सावधान रहना है इन आगे आनेवाले महीनोंमें।' अमलने ब्रह्मावर्तमें गङ्गा-स्नान करके नित्यार्चन किया और जाकर जब ब्रह्माजीके मन्दिरमें ठहरे उन साधुको प्रणाम करके बैठ गया तो वे बोले— 'अष्टग्रहीका योग तुम्हारे व्यवस्थानमें पड़ता है। वैसे भी शनि, मङ्गल तथा सूर्य तुम्हारे लिये अनिष्टकर रहे हैं

और राहु-केतु किसीको कदाचित् ही शुभद होते हैं। तुम ग्रह-शान्तिका कुछ उपाय कर लो तो अच्छा।'

'आप जैसी आज्ञा करें।' अमलने प्रतिवाद नहीं किया। ये साधु वृद्ध हैं, विरक्त हैं, पर्यटनशील हैं। ज्योतिषके उत्कृष्ट ज्ञाता लोग इन्हें कहते हैं। बिना पूछे अकारण कृपालु हुए हैं अमलपर, अतः इनके वचन काटकर इन्हें दुःखी करना वह चाहता नहीं। वैसे कोई जप-तप, अनुष्ठान-पाठ करना अमलके स्वभावमें नहीं है। सकाम अनुष्ठानके नामसे ही चिढ़ है उसे।

'जिसे रुष्ट होकर जो कुछ बिगाड़ना हो, बिना रुष्ट हुए ही वह उसे ले ले।' अमल अनेक बार हँसीमें कहता है। परिवारमें कोई है नहीं। न घर है, न सम्पत्ति। सम्मान अवश्य है समाजमें; किंतु वह उससे सर्वथा उदासीन है। बच रहा शरीर। वह कहता है—'यह कुत्ते, शृगाल, पक्षियों, कछुओं अथवा कोड़ोंका आहार—इसे अग्नि लेगी या कोई और लेगा, इसकी चिन्ता मूर्खता है। कल जाना हो इसे तो आज चला जाय।'

'मृत्यु उतनी दारुण नहीं है, जितने दारुण हैं रोग। शरीर देखने, सुनने, चलनेकी शक्तिसे रहित, वेदना-व्याकुल खाटपर पड़ा सड़ता रहे···।' एक दिन एक मित्रने कहा था।

'कन्हाई न असमर्थ होता कभी, न निष्करुण। उसके स्वभावमें नटखटपन तो है ; किंतु कृपणता नहीं है।' अमल हँसा था। 'ये सारे अभाव, सारे कष्ट तबतक, जबतक इनको प्रसन्नतासे सहा जाय। ये असह्य बनेंगे तो

श्रीकृष्ण डाँट खायेगा। इनको विवश सहना पड़े उसे, जो नन्दके लालका कोई न होता हो।

'मैंने सुना है कि तुम अनुष्ठानमें अरुचि रखते हो। ग्रहोंमें सबसे उत्पीड़क शनि ही हैं। तुम नील मणि धारण करो। उससे राहु-केतुकी भी शान्ति हो जायगी। शनि अनकूल हों तो शेष सबके अरिष्ट अधिक अनर्थ नहीं करते।' साधुने समझाकर कहा।

'जैसी आपकी आज्ञा।' आश्चर्य ही है कि अमलने कोई आपत्ति नहीं उठायी। वैसे उसे कोई जप-तप बतावे तो कह बैठता है—'व्यायाम मेरे वशका नहीं। बाजीगरों—नटों और मल्लोंके लिये मैंने उसे छोड़ दिया है।'

× × ×

अष्टग्रहीका योग आ रहा था। गङ्गातट अनुष्ठानों, यज्ञोंके मण्डपोंसे सजा था। शतचण्डी, सहस्रचण्डी तथा श्रीमद्भागवतके सप्ताह चल रहे थे स्थान-स्थानपर। अष्टोत्तारशत सप्ताह भी हुए। अखण्ड कीर्तन, अखण्ड रामायणपाठके पवित्र स्वर दिशाओंको उन दिनों गुञ्जित करते रहते थे। कलिमें जैसे सत्ययुग उत्तर आया था। आतङ्क स्वयं तामस सही, उसमें मनुष्यको कितनी सत्त्वोन्मुख करनेकी शक्ति है, उस समय यह प्रत्यक्ष हो गया था।

'गं गणपतये नमः।' सर्वविघ्नविनाशक भगवान् गणपतिकी पूजा तो प्रत्येक पूजन, यज्ञ, अनुष्ठानके प्रारम्भमें होनी

ही थी। सभी पाठ-पारायण मण्डपोंमें पार्वती-नन्दन प्रतिष्ठा, पूजा हुई—हो रही थो।

'मं मङ्गलाय भौमाय भूमिसुताय नमः।' युद्धप्रिय, रक्त-विकारकारी, रक्तोद्गारी अंगारकी शान्तिके लिये रक्त वस्त्र, रक्त चन्दन, लाल पुष्पका सम्भार तो था ही, लाल गाय, ताम्र तथा मसूरका दान भी अनेक लोगोंने किया। बहुतोंने मूंगा पहना।

'शं शनिश्चराय सूर्यसुताय यमानुजाय नमः।' तैल और लोहेका दान तो शनिवारको अनेक लोग नियमपूर्वक करते हैं। उस समय काले तिल, उड़द, काले अथवा नीले वस्त्रोंका दान बहुत लोगोंने किया। अनेक ग्रह-शान्ति-समारोहोंमें अपराजिताके पुष्प अर्चनमें प्रयुक्त हुए। हाथी-दान किसीने किया या नहीं, पता नहीं; किंतु भैंसका दान सुननेमें आया। जौहरियोंके यहाँ उन दिनों नीलमके ग्राहक भी पर्याप्त आये।

राहु-केतुकी शान्तिके लिये भी मन्त्र-जप हुए। काली वस्तुओंका दान हुआ। वैदूर्य (लहसनियाँ) की अंगूठियाँ पहनीं लोगोंने। इनके अतिरिक्त भगवान् सूर्यकी भी अर्चा हुई। **'आं आदित्याय नमः'** पर्याप्त सुन पड़ा। सूर्यको रक्त कर्णिकार पुष्प तथा रक्त चन्दन, रक्त वस्त्र अर्पित हुए। रविवारको लवणहीन एकाहार व्रत भी बहुतोंने किया। कम-से-कम एक स्थानपर लाल रंगके वृषभ(साँड)को छोडा गया, यह मुझे पता है। लाल मणि तो मिलती नहीं। माणिक उन लोगोंने अँगूठियोंमें लगाया, जिन्हें सूर्य प्रति-कूल पड़ते थे।

'भले भले कहि छोड़िये, खोटे ग्रह जप-दान।'

यह बात उन दिनों सर्वथा सार्थक हुई। जहाँ नवग्रह-पूजन हुआ, उन स्थानोंको छोड़ दें तो चन्द्रमा, बुध, गुरु और शुक्रको अकेले-अकेले अर्चना प्रायः नहीं हुई। एक जौहरीने बतलाया था—'सामान्य समयमें अनेक लोग चन्द्रमाकी संतुष्टिके लिये मोती, बुधके लिये पन्ना, गुरुके लिये पुखराज और शुक्रके लिये हीरा लेने आते थे; किंतु इस कालमें इन रत्नोंका विक्रय अत्यल्प हुआ। लोग जैसे इनका उपयोग ही भूल गये।'

ब्राह्मणोंको भी श्वेत, पीत, हरित, धान्य, वस्त्रादि केवल नवग्रह-पूजन-जैसे अवसरोंपर ही प्राप्त हुए।

'तुम्हें नीलम नहीं मिला कानपुरमें?' ऐसे समयमें अमलको अंगूठीरहित देखकर उन साधुने एक दिन पूछ लिया। वैसे भी उत्तम नीलम कठिनाईसे मिलता है और अष्टग्रहीके दिनोंमें कानपुर-जैसे महानगरमें भी उसका न मिलना कोई आश्चर्यकी बात नहीं थी।

'नीलम? आपने तो मुझे नीलमणि धारण करनेको कहा था। मैं कानपुर तो गया ही नहीं।' अमलने सहज भावसे कहा। 'नीलम तो रत्न है—पत्थर है। वह मणि तो है नहीं। विश्वमें आज मणि—स्वतःप्रकाश रत्न कहीं मिलता नहीं। केवल रत्न हैं जो दूसरे प्रकाशमें चमकते हैं। वैसे भी मैं पत्थरोंमें नहीं, प्रकाशपुञ्जमें आस्था रखता हूं। इस नश्वर शरीरको सज्जित करनेकी अपेक्षा मैंने हृदयको यशोदा मैयाके लाड़ले नीलमणिसे अलंकृत करना अच्छा माना। आपका तात्पर्य समझनेमें मैंने भूल तो

नहीं की ?'

'भूल तो मैं कर रहा था'—साधुने अमलको दोनों भुजाओंमें भर लिया। 'तुम्हारा उपाय तो भव-महाग्रहको शान्त कर देनेमें समर्थ है। क्षुद्र ग्रहोंकी शान्तिका अर्थ तब क्या रह जाता है !

× × ×

'आप सब एक क्षुद्र मनुष्यका भी कुछ नहीं कर सके?' अष्टग्रहीको बीते पृथ्वीपर पूरे छः महीने हो चुके थे। देवलोकमें वे पुनः एकत्र हुए थे देवराजके आमन्त्रणपर। देवराजको कोई आक्रोश इसपर नहीं था कि पृथ्वीपर कोई महाविनाश नहीं हुआ। जो यज्ञ, अनुष्ठान, दान मनुष्योंने किये थे, उसे प्राप्तकर देवाधिप संतुष्ट हुए थे। उन्हें क्षोभ केवल यह था कि उन्होंने जिस व्यक्तिविशेषको लक्ष्य बनाया था, वह अप्रभावित ही रह गया था।

'किसीका अमङ्गल करना मेरा स्वभाव नहीं है। वक्र होनेपर भी मैं केवल व्यय कराता हूँ और बृहस्पति अशुभ कर्मोंमें अर्थ-व्यय तो करायेगा नहीं।' देवगुरुने इन्द्रको झिड़क दिया। 'वक्री होकर भी जो मैं नहीं करता, व्यय-स्थानमें स्थित होकर मैंने वह किया है। अमलने अपने छोटेसे संग्रहका प्रायः सब कुछ दुखियों, दीनों, अभावग्रस्तों-को दे दिया है।'

'व्ययस्थानपर स्थित बुध जब गुरुके साथ हो, केवल सुरगुरुको सहायता कर सकता है।' आकारसे कुछ ठिगने,

गठीले और गोल मुखवाले बुधने कहा—'देवराज सहस्राक्ष हैं। उन्होंने देखा है कि इसमें मैंने कोई प्रमाद नहीं किया है।'

'आप दोनोंसे पहले भी अधिक आशा नहीं थी।' देवेन्द्रने उलाहना दिया। 'आपने तो उस प्रतिपक्षको प्रबल ही बनाया। दान और धर्म व्यक्तियोंको दुर्बल तो बनाया नहीं करते। संसारमें कोई कंगाल हो जाय, इससे हम देवताओंका क्या लाभ ?'

सुरेन्द्र भूलते हैं कि 'अम्भोधिसम्भवा बुधकी भी कुछ होती है।' आचार्य शुक्र व्यंगप्रवीण हैं। उनका स्वभाव सुरोंपर कटाक्ष करना है—'बुध उसके प्रतिकूल हो कैसे सकते हैं, जों श्रीके परम श्रेयका आश्रित हो।'

'आपने भी तो कुछ किया नहीं।' इन्द्रके मुखसे सहज निकल गया।

'शुक्रसे सुर स्वहितकी आशा कबसे करने लगे ?' दैत्याचार्यने फिर कटाक्ष किया। 'द्वादश भवनमें स्थित शुक्र शुभ होता है शक्र! सूर्यके साथ मेरा प्रभाव अस्त न हो गया होता, श्रीकृष्णके उस आश्रितको अमित ओज दे आता। मैंने उसकी श्रद्धा और संयमको शक्ति नहीं दी, उसे आनन्दोपलब्धिका शुभ मार्ग नहीं दिखलाया, यह आक्षेप मेरे प्रतिस्पर्धी बृहस्पति भी मुझपर नहीं कर सकते।'

'श्रीकृष्णने मेरे वंशको कृतकृत्य किया, धन्य किया मुझे।' नित्य सौम्य अत्रितनय चन्द्रमा उठ खड़े हुए। 'वैसे भी रमाके नाते वे मेरे पूजनीय स्वजन हैं। उनका कोई

आश्रय लेता हो—मेरी अनुकूलता-प्राप्तिके लिये उसे क्या और कुछ करना आवश्यक रह जाता है ? उसके लिये यह विचार व्यर्थ है कि चन्द्र अष्टम है अथवा द्वादश। उसे तो मेरा सदा आशीर्वाद प्राप्त है।'

'हम दोनों तुम्हारे मित्र हैं।' राहुने रूक्ष स्वरमें बिना संकेत पाये ही बोलना प्रारम्भ किया। 'वैसे भी हमारे साहसकी सीमा है। जिसके चक्रका आतङ्क अब भी हमें विह्वल करता है, उसके आश्रितपर हमारी छाया अनिष्ट बनकर नहीं उतर सकती। हम उसका रोष नहीं—कम-से-कम उदासीनता तो पा सकते हैं अनुकूल बनकर। उसकी श्रद्धा-पूजाका स्वप्न हम नहीं देखते।'

'मैंने सुरेन्द्रकी आज्ञाका सम्मान किया है।' युद्धके अधिष्ठाता मंगल उठे। रक्तारुण वस्त्र, विद्रुममाल उन ताम्रकेशीके अंगारनेत्र इस समय शान्त थे—'अमलको ज्वर आया, थोड़ी चोट लगी और रोष आया। अब मैं इसका क्या करूँ कि वह अपना क्रोध श्रीकृष्णपर ही व्यक्त करता है। वे मेरे पूज्य पिता हैं। अपनी माता भूदेवीके उन आराध्यपर जब उनका कोई स्नेह-भाजन रुष्ट होता है, भौम इतना अशिष्ट नहीं है कि वहाँ उपद्रव करता रहे। फलतः विजयका नीरव वरदान तो मुझे अपनी धृष्टताका मार्जन करनेके लिये देना पड़ा। अमलने उसे मनोजयमें प्रयुक्त किया, शत्रुजयमें भी कर सकता था और सुरेन्द्र ! इस समय आप उसके शत्रु हैं, यह आप भूले नहीं होंगे।'

'श्रीकृष्ण मेरे स्नेहभाजन हैं।' भगवान् सूर्यने बड़े

मृदुल स्वरमें कहा। 'महेन्द्र उनके किसी जनका अनिष्ट चाहेंगे तो यह चिन्तन स्वयं उन्हें भारी पड़ेगा। स्वर्गका सम्मान मुझे अपनी पुत्री कालिन्दीसे अधिक प्रिय नहीं है।'

'न मुझे है।' इस बार कृष्णवर्ण, निम्ननेत्र, भयानकाकृति शनैश्चर खड़े हुए। 'यमसे मेरा इस विषयमें सर्वथा मतैक्य है। यमुना मुझे यमसे कम प्रिय नहीं है। कालिन्दीकान्त जिसके स्वजन हैं, उसका अपकार न यम करेंगे और न शनैश्चर। मैंने स्वर्गको ओर दृष्टि नहीं उठायी—यही मेरा कम अनुग्रह नहीं है।'

'सुरेन्द्र! तुमसे मेरे शिष्य दैत्य-दानव अधिक बुद्धिमान् हैं।' शुक्राचार्य फिर बोले। 'श्रीकृष्णको जो भूलसे भी अपना कहता है, उसकी ओर ये देखते ही नहीं और तुम आशा करते हो कि ग्रह उसे उत्पीड़ित करेंगे? सम्यक् ग्रह-शान्ति—सबकी सर्वानुकूलता श्रीकृष्णके श्रीचरणोंमें रहती है देवाधिप!'

इन्द्रने मस्तक झुका लिया था।

—:०:—

अकुतोभय

हिरण्यरोमा दैत्यपुत्र है, अतः कहना तो उसे दैत्य ही होगा। उसका पर्वताकार देह दैत्योंमें भी कमको प्राप्त है; किंतु स्वभावसे उसका वर्णन करना हो तो एक ही शब्द पर्याप्त है उसके वर्णनके लिये—'भोला!'

वह दैत्य है, अतः दैत्योंको जो जन्मजात सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, उसमें भी हैं। बहुत कम वह उनका उपयोग करता है। केवल तब जब उसे कहीं जानेकी इच्छा हो—गगनचर बन जाता है वह। अपना रूप भी वह परिवर्तित कर सकता है, जैसे यह बात उसे स्मरण ही न हो।

वह दैत्य है; किंतु दैत्योंका कोई अवगुण उसमें है तो यही कि उसे बहुत भोजन चाहिये। क्षुधा वह सहन नहीं कर पाता। भूखा होनेपर यह नहीं देखता कि भोज्य-पदार्थपर उसका स्वत्व भी है या नहीं। कोई डाँटे तो कहेगा—'आप क्यों अप्रसन्न होते हैं? मुझे जठराग्नि जला रही है, अतः उसे आहुति दे रहा हूँ।'

वह दैत्य है; किंतु न सुरापी है और न मांसाहारी। उसे अन्न और फल चाहिये और बहुत चाहिये। भूख लगनेपर भोजनको वह अपना स्वत्व मानता है और यह कोई कैसे कहेगा कि भोजनपर क्षुधातुरका स्वत्व नहीं है।

कोई डाँट दे, पीट भी दे तो वह प्रतिकार करनेके स्थानपर चपचाप आहारको उदरस्थ करनेमें लगे रहना अधिक अच्छा मानता है। बहुत हुआ तो दृष्टि उठाकर बड़े निरीह भावसे देख लेगा। उसके चित्तपर जैसे किसीके अपशब्दका प्रभाव नहीं पड़ता, उसकी पर्वताकार कायापर किसीका आघात भी कुछ जान नहीं पड़ता।

वह दैत्य है—है तो दैत्यपुत्र ही; किंतु किसीको उत्पीड़ित करना तो दूर, दूसरोंकी पीड़ा उससे देखी नहीं जाती। एक बार मर्त्यलोक गया था और वहाँ किसीको व्याधिग्रस्त देखकर क्रन्दन करता सीधे सुतल आया। भगवान् वामनके चरण उसने तब छोड़े, जब उस प्राणीके व्याधिमुक्त होनेका वचन उसे मिल गया।

'वत्स ! तुम धरापर मत जाया करो ?' वामनने उस दिन उसके लिये एक मर्यादा बनायी। सुतलमें तथा दूसरे दिव्य लोकोंमें तो आधि व्याधि होती नहीं। वहाँ वह घूम लिया करे तो कोई हानि नहीं थी।

'क्यों तात ?' वह भगवान् वामनको पिता ही मानता है। उसके पिता उसी दिन, उसी क्षण मारे गये, जब वह उत्पन्न हुआ था। उन्होंने दैत्यराज बलिकी अवज्ञा करनेका दुःसाहस कर लिया और सुतलमें तो भगवान् नारायणका महाचक्र दैत्यराजके प्रतिपक्षीको एक क्षण भी जीवित रहने नहीं देता। माताने उससे कह दिया है कि दैत्यराजके द्वारपर गदापाणि उपस्थित रहनेवाले त्रिभुवनेश्वर ही उसके पिता हैं और उसने इसे सहज भावसे स्वीकार कर लिया है। उसे अटपटा लगा कि त्रिभुवनके स्वामी उसके

ये पिता हैं तो वह त्रिलोकीमें कहीं भो क्यों नहीं जा सकता।

'धराके लोग अल्पकाय, अल्पप्राण हैं।' भगवान् वामनने उसे समझाया। 'उनका साहस भी अल्प है और संग्रह भी। तुम्हारे देहको देखकर वे भयभीत होंगे। तुम्हें वहाँ क्षुधा लग गयी तो उनमेंसे बहुत अधिक लोगोंका आहार तुम्हें आवश्यक होगा, वे भूखे रह जायँगे।'

'मैं वहाँ नहीं जाऊँगा।' उसे किसीको भी आतंकित करना प्रिय नहीं है। कोई उसके कारण भूखा रह जाय, यह तो बहुत बुरी बात होगी। उसे भूखका अनुभव है और किसीको भी भूख लगनेपर आहार न मिले, यह वह सोचना भो नहीं चाहेगा।

सुतलमें जो ऐश्यर्य है, स्वर्गके देवता उसकी केवल स्पृहा कर सकते हैं। इच्छा करते ही पदार्थ उपस्थित होता है वहाँ और देवताओंके समान दैत्य घ्राणग्राही नहीं हैं। उनके उपभोगमें धराकी स्थूलता भले न हो, देवों-जैसी सूक्ष्मता भी नहीं है लेकिन वह तो इच्छा भी नहीं करता। आहार दीखनेपर उसे क्षुधा लगती है और तब यह देखनेकी क्या आवश्यकता है कि वह किसके लिये प्रस्तुत हुआ है।

जहाँ पदार्थ-बाहुल्य होता है, स्वत्वका प्रश्न प्रायः विवाद नहीं खड़ा करता। वह अन्न और फल ही तो खाता है। उसके आहारको लेकर किसीमें वहाँ ईर्ष्या नहीं जागती। कहीं वह भोजन करने बैठ जाय, दूसरा हँसकर उसको भोजन कराना अपने विनोदका साधन बना लेता

है। असुविधा तब होती है, जब वह कहीं भी पड़कर खर्राटे लेने लगता है। किसीका घर, किसीका अन्तःपुर, किसीकी शय्या हो—निद्रा आने लगे तो वह उसे अपनी ही शय्या समझ लेता है।

'अरे उठो!' उस दिन वह दैत्यराजके पुत्र बाणासुरके अन्तःपुरमें उनकी शय्यापर सो गया था। बाणपत्नीने उसे जगाना आवश्यक माना ; क्योंकि उनके पतिदेवके आनेका समय हो गया था।

'माँ! सोने दे मुझे।' उसने करवट बदल ली।

'मैं तुम्हारी माँ नहीं भाभी हूँ।' बाणपत्नीको क्रोध नहीं आया। वे हँसीं। उन्हें पता है कि हिरण्यरोमा प्रत्येक स्त्रीको माँ कह लेता है। उसे तो सम्बन्ध समझाना पड़ता है।

'तो क्या हुआ? भाभी माँ!' वह बहुत हिलाने-डुलानेपर उठकर बैठा भी तो फिर लेटते हुए बोला—'मुझे निद्रा आ रही है।'

'अपने घर जाकर सोओ! तुम्हारे भाई आनेवाले हैं।' बाणपत्नीने उसके मुखपर पानीके छींटे दिये—'अब तुम विवाह कर लो!'

'विवाह? क्यों?' बस, वह विवाह के नामसे ही झल्लाता है—'तुम कर लो विवाह!'

'मैंने तो तुम्हारे भाईसे विवाह कर लिया है!' बाणपत्नी हँस रही थीं।

'तब हो तो गया, अब क्या पूरा संसार विवाह ही करेगा।' वह उठ खडा हुआ—'एक काम था, किसीने

कर लिया ; हो गया। मैं कहूँगा कि मुझे लोग सोने भी नहीं देते।'

'तुम्हें कौन सोने नहीं देता ?' बाणने अन्तःपुरमें प्रवेश करते हुए पूछा।

'माँ नहीं सोने देती।' हिरण्यरोमा अब भी निद्रालस स्वरमें बोल रहा था। 'सो जाओ!' बाणने अनुमति दे दी। पत्नीसे वे बोले—'इनके भोजन-शयनमें व्याघात मत बना करो। तुम जानती तो हो कि केवल ये हैं जो दैत्येश्वरके सिंहासनपर भी इसी प्रकार सो सकते हैं।'

'शान्तं पापम्।' पत्नीने पतिके मुखपर हाथ रख दिया। 'दैत्येश्वरका अपमान करनेवालेके साथ वह श्रीहरिका ज्योतिर्मय चक्र क्या करता है, जानते तो हो।'

'मैं भला क्यों पिताजीका अपमान करूँगा।' बाण खुलकर हँसा। 'सचमुच यह हिरण्यरोमा एक दिन सो गया था सिंहासनपर। मुझे भी तुम्हारे समान ही आशंका हुई थी। पता नहीं क्यों, यह मुझे बहुत प्रिय है।'

'वत्स! वह भगवान् वामनका बहुत स्नेहभाजन शिशु है।' माता पार्वतीने पूछनेपर मुझे समझाया था—'उसके मनमें निखिल लोक उसके पिताके—श्रीहरिके हैं। सत्य ही तो है उसकी भावना। वह कहीं सोता है, कहीं आहार करता है तो अपने पिताकी शय्या और सामग्रीका ही उपयोग करता है। उसकी किसी क्रियासे किसीका कोई अपमान नहीं होता।'

'ये मुझे भी माँ कहते हैं।' सलज्जभावसे बाण-पत्नीने कहा।

'मेरा छोटा भाई ही तो है ।' बाणने हँसकर कह दिया। 'वह तो तुम्हारी कन्याको भी देखेगा तो माँ ! कहकर ही पुकारेगा । ऊषा बहुत चिढ़ती है ; किंतु इसको तो प्रत्येक बार समझाना पड़ता है कि वह इसकी भ्रातृ-पुत्री है ।'

× × ×

'तुमलोग इस प्रकार क्यों भागते हो ? मैं थोड़े फल खाऊँगा ।' वह हिरण्यरोमा एक दिन घूमता हुआ अमरोद्यान नन्दन-कानन जा पहुँचा। उसके अकल्पित विराट वपुको देखकर रक्षक क्रन्दन करते भागे तो उसे आश्चर्य हुआ। उसने उन्हें आश्वासन देनेका यत्न किया।

'कोई दैत्य अमरावतीमें आ गया है !' रक्षकोंको कहाँ धैर्य था, प्राणीका अपना भय ही तो उसे आतंकित करता है। निर्विष सर्पको भी देखकर अधिकांश मनुष्योंके प्राण सूख जाते हैं। हिरण्यरोमा दैत्य था — दैत्य देवताओंके सहज शत्रु और जो एकाकी शत्रुपुरीमें शस्त्रहीन चला आया है, वह सामान्य शक्तिशाली कैसे हो सकता है। उद्यान-रक्षकोंने सुधर्मा सभा में पहुँचकर देवराजसे पुकार की—'वृत्रसे किञ्चित् ही अल्पकाय है वह ! कौन जाने, अपनी कायाका विस्तार वह अब करने लगा हो। नन्दन-काननके समस्त फल अवश्य उसके उदर में आ जायँगे !'

'कौन है वह !' देवराजने देखा कि सुरोंके सेनापति

इस समय सुधर्मा सभामें नहीं हैं। उन शिवसुतकी संरक्षा देवताओंको प्राप्त है, इतनी ही कृपा उनकी। अन्यथा कार्तिकेय कोई देवेन्द्रके आज्ञानुवर्ती तो हैं नहीं कि मल्लिकार्जुन जानेके लिये शक्रको सूचना देना आवश्यक मानें।

'हम केवल धराके लोगोंको प्रभावित करते हैं!' सुरेन्द्रकी दृष्टि ग्रहगणोंकी ओर गयी तो उनमें भौमने सूचित कर दिया—'दैत्य देवताओंके अग्रज हैं। यदि वे कभी आतिथ्य-ग्रहण करने आ ही जायँ, उनसे युद्ध करना तो आवश्यक नहीं होना चाहिये।'

युद्ध-प्रिय मंगलका यह दृष्टिकोण अकारण नहीं था। जो योधा है, वही बलाबलका ठीक विचार भी कर सकता है। वृत्रके साथ संग्राममें सुर अपने समस्त शस्त्र खो चुके थे। वृत्रने शान्तभावसे उन्हें उदरस्थ कर लिया था। यह दैत्य भी एकाकी आया है और क्षुधित है। नन्दन-काननसे आहार ही प्रारम्भ किया है इसने। शान्त भी है और निर्भय भी। पता नहीं किस तपःप्रभावसे वह इतना साहस कर सका है।

'आप उसे देख लें!' इन्द्र स्वयं भी आशंकित हैं। वज्र लेकर उठ दौड़नेका साहस वे अपनेमें भी नहीं पाते हैं। किञ्चित् अवकाश चाहिये उन्हें। देवगुरुतक जानेका अवसर मिल जाय तो जैसी गुरुदेव अनुमति देंगे, वैसा करना है; किंतु दैत्य नन्दनवनमें आ गया है। वह किसी क्षण आ सकता है यहाँ। देवराजको आशा है कि दण्डधर यम उसे कुछ काल तो रोक ही सकते हैं।

'दैत्यराज बलि मेरे आराध्यके अनुग्रह-भाजन हैं।' महाभागवत यमराजने उठते हुए सूचित किया। 'यदि ये महानुभाव उनके स्नेहपात्र हैं तो मुझे इनका स्वागत करके प्रसन्नता होगी!'

'संयमनीके शास्ता किसका स्वागत करना चाहते हैं?' सहसा देवर्षि नारद पधारे। समस्त सुर उनके स्वागतमें उठ खड़े हुए।

'भगवान्! कोई दैत्य आ गया है आज अमरपुरमें।' शक्रने ही सूचना दी। 'हम नहीं जानते, वह किस शक्तिसे अकुतोभय है? हमें क्या करना चाहिये?'

'ओह! तो सुरपति हिरण्यरोमासे आतंकित हैं!' देवर्षि खुलकर हँसे। 'सावधानी अवश्य अपेक्षित है; क्योंकि भगवान् उपेन्द्रका पुत्र है वह, और कोई उसका अहित करने उठे तो वे भक्तवत्सल भूल जा सकते हैं कि देवमाता अदितिके कारण सहस्राक्ष उनके अग्रज होते हैं।'

'उपेन्द्र-पुत्र!' इन्द्रको आश्चर्य होना स्वाभाविक था। ऐसा कौन-सा पुत्र उपेन्द्रका है, जिसे स्वयं देवराज जानते नहीं हैं। 'वह तो दैत्य है।'

'दैत्य तो प्रह्लाद भी थे।' देवर्षिने व्यंगके स्वरमें कहा। 'उन अजन्माको देवमाता अपना पुत्र कह सकती हैं, देवराज अपना अनुज कह सकते हैं; किंतु कोई दैत्य उन्हें अपना पिता नहीं कह सकता?'

'वे महानुभाव कौन हैं?' इन्द्रने इस बार सीधे ही पूछा।

'हिरण्यरोमा दैत्य-पुत्र ही है; किंतु भगवान् उपेन्द्र

भावगम्य हैं। वह उन्हें पिता कहता है तो वे उसके पिता हैं, इतनी बात सुरपति समझ सकते हैं!' देवर्षिने समझाया। 'जब देवशक्ति उसका परिचय जाननेमें असमर्थ है, जब देवेन्द्रका व्यापक बोध उसका तेज समझ नहीं पाता, इतना तो सिद्ध है कि वह पुरुषोत्तमका पदाश्रित है।'

इन्द्रको लगा कि उनसे प्रमाद हुआ है। देवता—स्वयं देवेश भी जिसके सम्बन्धमें अधिक नहीं जान पाते, उसकी अगम्यता तो भगवान्‌की कृपा ही सूचित करती है। अन्यथा पृथ्वीपर, अधोलोकोंमें जो प्राणी हैं, उनके अन्तः-बाह्यके साक्षी तो देवता ही हैं। नम्रतापूर्वक इन्द्रने जानना चाहा—'हमारा कर्तव्य ?'

'कुछ नहीं।' देवर्षिने आशंका दूर की। 'हिरण्यरोमासे किसीको कोई भय नहीं है। अवश्य ही उसको क्षति पहुँचानेकी इच्छा करनेवालेको भय है और वह तो अच्युतकी कौमोदकीसे भय है। हिरण्यरोमा तो आया है दैत्योंकी आदि मातृष्वसाकी पद-वन्दना करने। देवमाता-की वन्दना करके उसे चले जाना है। बहुत हुआ तो कुछ फल खायेगा और देवधानीमें कहीं भी एक नींद ले लेगा।'

'वे देवधानीमें हम सबके उपस्थित रहते सो सकेंगे ?' इन्द्रका प्रश्न उचित है। देवराज जब दैत्यधानीमें नहीं सो सकते, हिरण्यरोमाके रहते देवधानीमें निश्चिन्त नहीं हो सकते, एक दैत्यको शत्रुओंके मध्य निद्रा आयेगी ?

'उसे किसका भय है।' देवर्षि खुलकर हँसे। 'वह

देवेन्दके सदनमें या इस देवसभामें निद्रा लेने लगे तो किसीको व्याघात डालनेका साहस नहीं करना चाहिये। समस्त लोक उसके पिताके, और अपने पिताके घरमें उसे निद्रा क्यों नहीं आयेगी ! लेकिन देवराज ! पिताके घरमें पुत्रकी निद्रामें बाधा देनेवाला क्षमा नहीं किया जाता। वह तो सो सकता है यमराजके किसी नरकमें भी।'

'प्रभो ! मुझपर तो कृपा ही रहे।' धर्मराजने आतुरतापूर्वक हाथ जोड़े। देवर्षि बड़े विनोदी हैं। कहीं इन्होंने उन महानुभावको उभाड़ दिया किसी दिन नरकमें निद्रा लेनेके लिये तो नरक सदाको ही नष्ट हुए धरे हैं।

'भय होता है प्राणीको तब जब वह नारायणसे विमुख होता है।' देवर्षि जानेको उद्यत होकर बोले—'श्रीहरिके पदाश्रित ही अकुतोभय होते हैं। देवाधीशको यह बात स्मरण रखनी चाहिये !'

—:०:—

कर्म

'कुछ कर्मोंके करनेसे पुण्य होता है, और कुछके न करनेसे। कुछ कर्मोंके करनेसे पाप होता है और कुछके न करनेसे।' धर्मराज अपने अनुचरोंको समझा रहे थे। 'कर्म संस्कारका रूप धारण करके फलोत्पादन करते हैं। संस्कार होता है आसक्तिसे और आसक्ति क्रिया एवं क्रियात्याग, दोनोंमें होती है। यदि आसक्ति न हो तो संस्कार न बनेंगे। अनासक्त भावसे किया हुआ कर्म या कर्मत्याग, न पुण्यका कारण होता है और न पापका।'

बड़ी विकट समस्या थी। कर्मके निर्णयके लिए जो सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु, दिशाएँ, सन्ध्या, दिन-रात्रि, चन्द्रमा, गौएँ, मन, बुद्धि एवं काल—ये द्वादश साक्षी नियत किये गये थे, उनमेंसे केवल मन और बुद्धि ही आसक्ति अनासक्तिके साक्षी हो सकते थे। वे तो उसी जीवके हैं यदि उन्होंने कहीं पक्षपात किया तो!

'एक बात और' धर्मराजने अपनी बात आगे बढ़ायी। 'बहुधा अधर्म भी धर्म बनकर धोखा देता है और परिस्थिति-भेदसे धर्म भी अधर्म हो जाता है। दूसरेके वर्णाश्रम-धर्म अपने लिए परधर्म हैं। धर्मका केवल बाह्यनाटक तो

दम्भ हैं। शास्त्रोंके शब्दोंका जान-बूझकर अन्यथा अर्थ करना छल है। जो अपने धर्ममें बाधा डाले, वह किसीके लिए धर्म होनेपर भी विधर्म है। अपने धर्मसे भिन्न किसी भी धर्मकी स्वेच्छा स्वीकृति धर्माभास है। ये पाँचों अधर्म अथच त्याज्य कर्म हैं।'

बेचारे यमदूत—सिर पकड़ लिया उन्होंने। यह अटपट परिभाषा समझ लेना सरल नहीं था और समझे बिना उनका कल्याण नहीं। यदि तनिक भी चूके, किसी भी जीवको भ्रान्तिवश कष्ट मिला तो धर्मराज क्षमा करना जानते ही नहीं। उन्होंने जब कभी बूढ़े ब्रह्माजीसे पढ़ा होगा—पितामह बहुत व्यस्त रहे होंगे सृष्टिकार्यमें। धर्मराजको क्षमाका पाठ पढ़ाना ही वे भूल गये।

विवश होकर किया गया त्याग, कष्ट-सहन, ये सब पुण्य नहीं हैं और इसी प्रकार किसी विशेष परिस्थितिमें या किसीके द्वारा बलपूर्वक कराया गया, अनिच्छा पाप भी पाप नहीं है।' यही एक सीधी बात कही थी संयमनी-पतिने। दूतोंने बड़े आनन्दसे सिर हिलाकर सूचित कर दिया कि वे यह अन्तिम वाक्य समझ गये।

'अब तुम जा सकते हो।' उन्होंने देख लिया था कि दूतोंके हाथमें पाश और दण्ड उपस्थित हैं। उनके दूत कभी प्रमाद नहीं करते। भूलें भी यदा-कदा ही उनसे होती हैं। कार्य-क्षेत्रमें ही वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञानोद्गमका सर्वश्रेष्ठ स्थान अनुभूतिका क्षेत्र है।' उन्हें उपदेशके लिये अवकाश भी कहाँ मिलता है। अहर्निश अविराम न्यायाधीशका स्वरूप उन्हें दूसरी ओर कहाँ

ध्यान देने देता है।

'अनुभूतिके क्षेत्रमें भ्रान्तिकी सम्भावना तो रहती है। डरते-डरते वक्रतुण्डने जो सबसे अधिक धृष्ट हो गया था, बहुत ही नम्र शब्दोंमें निवेदन किया। 'और उसका परिणाम होता है दण्ड..........................।'

'भ्रान्ति ही तो चेतनताका लक्षण है। भूलें या तो पूर्णपुरुष परमात्मासे नहीं होतीं या जड़से। पितामह भी कभी-कभी दो सिर, तीन पैर या किसी नेत्रादि गोलकसे सर्वथा हीन प्राणोंकी सृष्टि कर डालते हैं और यही भूलें बतलाती हैं सृष्टिकर्ता कोई चेतन है—जड़ नहीं।' कुछ रुष्ट होकर धर्मराजने डाँटा! 'तुम मनुष्यकृत जड़ यन्त्र बनना चाहते हो या तुमने अपनेको पूर्ण पुरुष मान लिया है!'

'पर दण्ड.........।' दूत भयाक्रान्त होनेपर भी इतना कह ही गया।

'दण्ड?' यमराजने फटकारा 'मूर्ख हो तुम! दण्ड ही शिक्षा है। वही भ्रान्तिसे सावधान करता है और प्रमादको दूर रखता है।'

कोई फिर बोलने का साहस कर नहीं सकता था। मस्तक झुकाकर अभिवादन किया और चुपचाप वहाँसे खिसक गया।

× × ×

(२)

'दान, सत्य, सेवादि करनेसे पुण्यप्रद होते हैं।' यमदूतोंने अपनी एक बैठक कर ली थी। 'व्रत, उपवास, संयम प्रभृति कर्मोंके न करनेमें पुण्य हैं।' वक्रतुण्डने धर्मराजके प्रथम वाक्यांशका भाष्य किया।

'हिंसा, चोरी, अनाचारादि करनेसे पाप होता है।' बड़ी सीधी बात कह दी भीमदर्शन ने। 'और सन्ध्यादि नित्यकर्म न करनेसे।' नैमित्तिक एवं काम्य कर्मोंकी फलोत्पादकतापर उन्हें कुछ समझना नहीं था। सभी सकाम कर्म विधिपूर्ण होनेपर कामनारूप एवं विधिभंग होनेपर या तो निष्फल होते हैं या विपरीत फल देते हैं। लेकिन इस झमेलेसे यमदूतोंको कुछ लेना-देना नहीं था। ये कर्म इसी लोकमें फलाफल देनेके लिए थे।

'शूद्र यदि वेदाध्ययन या यज्ञ कराने लगे तो यह परधर्म होगा।' वज्रनखने भी चुप रहना ठीक नहीं समझा। 'विषयचिन्तन करते हुए दिखावटी इन्द्रिय-निग्रह दम्भ है।' धूम्रपानको भी यज्ञ कहने—जैसी व्याख्या छल है। गृहस्थ जीवनाशके भयसे हवन भी छोड़ दे तो ऐसे कर्म विधर्म होंगे। संन्यासी संग्रह करके अतिथिसत्कारमें लगे तो यह धर्माभास ही होगा। लगे हाथ उन्होंने पाँचों अधर्म-शाखाओं का भाष्य कर दिया।

'अन्न न मिले तो उपवास पुण्यप्रद न होगा।' ह्रस्वाङ्गने अपने लिए सीधा स्थान ही चुना। 'किसीके मुखमें बलात् मांस डाल देनेसे वह मांसाहारका अपराधी भी नहीं बनेगा।'

'पागल, पशु और शिशु किसी कर्मसे युक्त नहीं होते।' यही सबसे कठिन स्थल था। 'किन्तु बुद्धिमान् पुरुष भी आसक्ति न रखकर कर्म करेगा और उसके फल का भागी न होगा—बड़ा टेढ़ा प्रश्न है। ऐसे पुरुषका निर्णय कैसे होगा?' सबसे वृद्ध बृहदोदरने मुख्य प्रश्न उठाया। इसीके निर्णयार्थ तो यह गोष्ठी बैठी थी। शेषांश तो निर्णीत ही थे। उनपर कुछ न भी कहा गया होता तो क्या हानि थी।

'म्याऊँका ठौर' कौन पकड़े। सभी निस्तब्ध हो गये। किसीके पास कोई उत्तर नहीं था।

'चलो अनुभूतिके क्षेत्रमें!' वक्रतुण्ड अपने व्यंगपर स्वयं दुखित हो गया।

'वहाँ भ्रान्ति हो तो दण्ड तो धरा ही है।' ह्रस्वकाय ही दण्डसे सबसे अधिक डरा करता था।

'दण्ड ही शिक्षा है!' महाहनुने धर्मराजके शब्द दुहरा दिये। 'सच्ची बात तो यह है कि अनुभवकी अपेक्षा अपने नायकका मोटा दण्ड ही हमें अधिक ज्ञान देता है।' जब बुद्धि कोई मार्ग नहीं पाती तो अन्तर या तो झुँझला उठता है या शून्य अट्टहासमें परिस्थितिकी गम्भीरताको उड़ा देनेका व्यर्थ यत्न करता है।

'महाराजाधिराज श्रीधर्मराज·········।' अग्रचरका उच्च स्वर कानोंमें पड़ा। सम्भवतः आज धर्मराज स्वयं किसी विशिष्ट पुरुषको अपनी पुरी दिखलाने उठ पड़े थे। 'महाराज इधर ही आ रहे हैं।' दूतोंने शीघ्रतापूर्वक

अपने पाश एवं दण्ड उठाये और अस्त-व्यस्त मर्त्यलोककी ओर चल पड़े।

× × ×

(३)

'इनका क्या होगा ?' एक संड-मुसंड दिगम्बर पड़े थे एक छोटी-सी नदीके किनारे यों ही घासपर। खूब परिपुष्ट शरीर था और इतना मैल उसपर जम गया था कि मानो वर्षोंसे स्नान न किया हो। सिरके बढ़े बाल उलझ गये थे। श्मश्रुजालमें तिनके एवं धूलिभरी थी। हाथ-पैरके नख खूब बढ़ गये थे। उनके मुखपर एक ज्योति थी और नेत्र अधमुँदे हो रहे थे।

'इसने तो एक ओर से सभी कर्मोंका त्याग कर दिया है।' वक्रतुण्डने महाहनुके उत्तरमें कहा। 'भोजनादि छोड़ा तो है नहीं, कोई लाकर खिला दे तो चाहे जो भी खा लेता है। खाद्याखाद्यका कोई विचार नहीं। विधि-निषेधका तनिक भी ध्यान नहीं। पकड़ ले चलो ! इस प्रकारके कर्महीन तमोलोकके अतिरिक्त और कहाँ जायँगे।'

'मुझे तो रंग-ढंग और ही दिखायी पड़ते हैं। यह आनन्द, यह मस्ती और मुखका यह तेज !' महाहनुने प्रतिवाद किया। 'मुझे तो अजामिलके समयकी मार अब भी कँपा देती है। दुष्कर्मियोंके लक्षण तो इनमें हैं नहीं। मैं तो साहस नहीं करता आगे बढ़नेका।'

'पुण्यात्मा सही। ले चलो फिर भव्यरूप रखकर।' झल्ला पड़ा वक्रतुण्ड। 'अन्ततः समय तो इनका हो ही गया है और ले चलना ही होगा किसी रूपमें।'

'पुण्य भी कहाँ है इनके पास!' बृहदोदरने खिन्न होकर कहा। 'आज अपने सब-के-सब साक्षी मूक हो गये हैं। इनके मन और बुद्धिका तो कोष ही रिक्त पड़ा है।' आश्चर्य था स्वरमें।

'राजाके कर्मका षष्ठांश, गुरुके कर्मोंका दशमांश और शिष्यके कर्मका दशमांश, माता-पिताके कर्मोंका भी कुछ भाग।' महाहनु विस्मित हो रहे थे। मान लिया कि ये गृहस्थ नहीं। पत्नी और पुत्रके कर्मांश इन्हें आबद्ध नहीं करते। सम्भव है गुरु न किया हो और न किया हो कोई शिष्य। माता-पिताके बिना आकाश से टपके न होंगे। किसी न किसी राजाका ही राज्य होगा यह इनके कर्मोंका अंश भी यहाँ क्यों उपलब्ध नहीं होता?'

'समस्या सीधो नहीं है।' वृहदोदरने गम्भीरतासे कहा। तीन ही यमदूत इधर आये थे। साक्षी मौन हैं। मन और बुद्धिको छड़ दें तो संस्कारात्मक चित्त ही ढूंढ़े नहीं मिलता। अब इन्हें ले भी चलें तो किस रूपमें?' यमदूतों की दृष्टि दूरसे ही प्रत्येकके अन्तः-प्रदेशको साक्षात् कर लिया करती है।

'एक उपाय है' वक्रतुण्डने सबको किञ्चित् आश्वस्त होनेका अवकाश दिया। 'हम इनके सम्मुख प्रत्यक्ष हो जायं। अपने आप निर्णय हो जायगा कि हम इन्हें ले चलें

या यहाँसे नौ-दो ग्यारह हों।' बात यह है कि धर्मराजने उन्हें बता रक्खा था कि तुम्हें देखकर भी यदि कोई भयभीत न हो तो समझ लेना कि यह तुम्हारे अधिकार-क्षेत्रसे परेका जीव है। उसके सम्बन्धमें मुझे सूचना दे देना। जो तुम्हें देखकर भयभीत हो जाय—बस, उसीके सम्बन्धमें तुम्हें विचार करना है।

'यदि कोई समर्थ हुआ' चौंककर महाहनुने सुझाया 'कहीं दुर्वासाकी भांति क्रोधी भी हो साथ ही ? लेने-के-देने पड़ जायँगे केवल सम्मुख प्रत्यक्ष होनेमें।'

'अन्ततः इनके कर्म हो क्या गये ?' कर्म छूमन्तर तो हुआ नहीं करते और सृष्टिमें आकर कोई निष्कर्म रह नहीं सकता। ये अनासक्तकर्मी होंगे। जो थोड़ा बहुत भोजनादि कर्म करते भी हैं, उसमें इनकी आसक्ति नहीं है।' वक्रतुण्ड सम्मान करने लगा था महापुरुषका।

'अनासक्ति फलोत्पादन नहीं करती, ऐसी बात तो है नहीं।' बृहदोदरने धर्मराजके उपदेशपर ही शङ्का उठायी। 'कर्म होगा तो उसका परिणाम भी होगा। विश्वमें कुछ नष्ट तो होता नहीं। यह परिणाम कर्ताको स्पर्श नहीं करते तो होते क्या हैं ?'

'उँह, पशुओं एवं उन्मत्तोंके कर्मफल क्या होते हैं ?' महाहनु हँस पड़ा सहचरके अर्थशून्य तर्कपर। प्रश्न तो यहाँ है कि अनासक्त भावसे क्रिया कर्म फल भले न उत्पन्न करे; किन्तु अनन्त अपार सञ्चित, रागादिके कर्मांशका वह नाश तो नहीं करता। इनके सञ्चित और इनके भागके इतरजनोंके कर्मांशका क्या हुआ ?'

यह विवेचन चल ही रहा था। एक क्षणके लिए दृष्टि हट गई थी तीनोंकी महापुरुषपरसे। दूसरे क्षण उधर उन्होंने देखा और हक्के-बक्के हो रहे। अधखुले नेत्र पूरे बंद हो गये थे। केवल स्थूल शरीर घासपर पड़ा था। इधर-उधर, ऊपर-नीचे, सब कहीं देख डाला—सूक्ष्म शरीर या कारणशरीरका पता नहीं था। इनसे पृथक् जीवकी कल्पना उन्होंने कभी नहीं की।

'महाराजसे शीघ्र निवेदन कर देना चाहिये। भागे वे संयमनीकी ओर। उन्हें कौन बतावे—'न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति।' वे किसीकी सुननेको रुक भी कहाँ सकते थे।

× × ×

'जिनके अन्तःकरणके किसी कर्म-संस्कारकी उपलब्धि न हो, उनसे तुम्हें मतलब भी क्या है।' वही संयमनी, वही धर्मराज और वही यमदूत। विवश धर्मराज आज फिर अपने दूतोंको समझा रहे थे। झल्ला भी रहे थे इन अज्ञ दूतोंपर।

'हमने कान पकड़ा। झाँकेंगे भी नहीं ऐसे महापुरुषों-की ओर।' बड़ी दीनता थी महाहनुके स्वरोंमें। 'एक जिज्ञासामात्र की हमने। यदि प्रभु अधिकारी समझें…।'

'स्फटिक या कमलपत्रको देखा है?' धर्मराजने कुछ शान्त होकर पूछा।

'उसपर कीचड़ या जल लिप्त नहीं होता।' वक्रतुण्डने

आशय समझ लिया था। 'स्पर्श करके भी गिर जाता है।'

'ठीक इसी प्रकार ज्ञानादि साधनोंसे विशुद्ध चित्तपर कोई संस्कार ठहरता नहीं।' धर्मराजने उपदेशको यथा सम्भव संक्षिप्त करनेका प्रयत्न किया।

'तब उस संस्कारका होता क्या है?' वृहदोदरने शङ्काका उत्तरार्ध उत्थित किया 'क्या उसका नाश हो जाता है?' वह जानता है कि विश्वात्माकी सृष्टिमें विनाश-जैसा कोई शब्द है ही नहीं। वहाँ केवल रूपान्तर-मात्र होता है।

'शुभांश सेवक एवं शुभचिन्तकोंमें तथा अशुभांश उत्पीड़क एवं निन्दकोंमें वितरित हो जाता है।' धर्मराजने बड़े मजेसे कह दिया। उनके प्रेमाकर्षण या द्वेषाकर्षणकी तीव्रता या लघुताके अनुसार।'

'अजामिलके पाससे तो गये नहीं थे।' कहींसे आकर ह्रस्वकाय भी पीछे खड़ा हो गया था। सुनन्दके गदाघात-का चिन्ह अभी भी उसके भालपर बना हुआ था। उसका समाधान उस दिनके धर्मराजके उपदेशोंसे हुआ नहीं था।

'तू तो पूरा बच्चा है।' धर्मराज मुसकरा पड़े। न्यायाधीशके कठोर मुखपर हास्य भी भयभीत होकर ही आता है। 'तुझे बता तो दिया कि मेरे नियम मेरी अधिकार सीमा तक ही हैं। जो मेरे और सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं, उनके जनोंके सम्बन्धमें नियम निर्धारण करना मेरी शक्तिसे बाहर है। वहाँ नियमकी ओर न देखकर तुम्हें केवल इतना ही देखना है कि जीव किस प्रकार

प्रभुके नाम, रूप, गुण, लीला, धामादिसे तनिक भी सम्बन्धित तो नहीं है ? ऐसा होनेपर उधरका मार्ग ही छोड़ दो ।'

'जी हमने उधरका मार्ग ही छोड़ दिया आज ।' पता नहीं कहाँसे हँसते हुए देवर्षि नारद खड़ाऊँ खटकाते, वीणा लिये, खड़ी चुटिया फहराते आ धमके । 'सोचा कि भक्त-राजको 'जय गोविन्द' करते चलें । नहीं तो जाना तो था कैलाश ।'

दूत एक ओर खिसककर दण्डवत् करने लगे । धर्मराज हड़बड़ाकर उठे और उन्होंने भी पृथ्वीमें लेटकर मस्तक देवर्षिके पद्मारुण पदोंपर रक्खा ।

जीवनका चौराहा

'आप कुछ व्यस्त दीखते हैं !' देवर्षिने चित्रगुप्तकी ओर देखा।

'भगवन् !' अतुरतापूर्वक अपनी लेखनी एवं अनन्त कर्मपत्र एक ओर रखकर उठे वे जीवोंके कर्मोंका विवरण रखनेवाले यमराजके महाकार्यालयाध्यक्ष। अपनी व्यस्तता में उन्होंने देखा नहीं था कि देवर्षि कब संयमनीपुरीके द्वारदेशसे भीतर आ गये हैं। झटपट साष्टाङ्ग प्रणिपात किया उन्होंने।

चित्रगुप्तकी व्यस्तता—कोई ठिकाना है उनके कार्यालयके कार्य-विस्तार का। अनन्त कोटि प्राणी और कौन कहाँ है, किसका कौन-सा प्रारब्ध भोग चल रहा है, कौन-सा भोग देना है ? किस जीवको कब वर्तमान देह छोड़ना है तथा कौन-सा दूसरा देह धारण करना है। यह सब विवरण—क्षण-क्षणका विवरण रखना ठहरा उन्हें।

जीवोंका—भोगयोनिके जीवोंका विवरण जो सरल है; किंतु मनुष्योंका कर्म-विवरण—धराके अरबों मनुष्य, किंतु मनुष्य कब क्या करेगा, कहाँ ठिकाना है। वह कर्म-स्वतन्त्र प्राणी—उसके आधे पलके कर्म अनन्त-अनन्त

जीवनके हेतु बन जाते हैं और कभी-कभी क्षणार्धमें वह चित्रगुप्तके अपने पूरे खातेको समाप्त कर डालता है। मानवका कर्म-विवरण—चित्रगुप्तकी व्यस्तताका अनुमान कोई कैसे कर सकता है।

'आपका लोक भरा-पूरा तो है ?' देवर्षि किञ्चित् हँसे। चित्रगुप्तको आश्वासन मिला कि उनको तत्काल अभ्युत्थान न देनेके अपराधकी क्षमा प्राप्त हो गयी।

'संयमिनीमें स्थानाभाव नहीं होगा—स्रष्टाकी अपार अनुकम्पाने यह व्यवस्था प्रारम्भमें न कर दी होती।' चित्रगुप्तने विनम्र स्वरमें निवेदन किया। 'आज यहाँ अवकाश नहीं होता कि मैं भी बैठ सकूँ।'

पल-पल चले आते धराके जीव—सबके कर्म-विवरण देखे बिना ही कहा जा सकता था, वे कहाँ जायँगे। यमराजके दूत उन्हें पुरीके दक्षिण द्वारसे ले आते हैं और दक्षिण द्वारसे प्रविष्ट प्राणी तो नरकमें ही जाया करते हैं।

'इस व्यस्ततामें भी आप कुछ प्रतीक्षा करने लगते हैं ?' देवर्षिने देख लिया था कि चित्रगुप्तजीके नेत्र बार-बार उत्तर एवं पूर्वके द्वारोंकी ओर उठ जाते हैं।

'देवराज कहते हैं, अमरावतीमें पुण्यात्माओंकी जन-संख्या घटती जा रही है।' खिन्न स्वरमें बोले चित्रगुप्त, 'जो पहुँच चुके हैं, उनके पुण्य-भोग समाप्त होने ही ठहरे और धराकी स्थिति मुझसे अधिक श्रीचरणोंको ज्ञात है। हम क्या कर सकते है। हमारे उत्तर एवं पूर्वके द्वार पुण्यात्माओंका प्रवेश यदा-कदा ही प्राप्त कर पाते हैं।'

'नारायण ! माधव ! गोविन्द !' देवर्षिको इतना अवकाश कहाँ कि वे किसीकी विस्तृत वार्ता सुनें। कहीं दो क्षण रुके—अनुग्रह उनका। उनकी वीणाके तार झंकृत हो उठे। अभी धर्मराजका साक्षात्कार करना है उन्हें। चित्रगुप्तको पुनः अपना लेख-विवरण सँभालनेमें आधा क्षण भी नहीं लगा।

× × ×

'देवाधिराजको कलिने सर्वथा निश्चिन्त कर दिया है।' देवर्षि अमरावती पहुँच गये थे। महेन्द्रकी अभ्यर्थना स्वीकार कर ली थी उन्होंने। देवसभाके पाटलपराग आस्तरणपर सुराङ्गनाओंके सुकुमार पद स्थिर हो चुके थे। नतग्रीव, बद्धाञ्जलि सुरसमूह—देवर्षिकी उपस्थितिने संगीत एवं नृत्यको विराम दे दिया था; किंतु देवर्षिका ध्यान इधर नहीं था। वे कह रहे थे—अल्पप्राण मानव अब अपने तपसे सुरोंको सशङ्क नहीं कर सकता और उसे अपने निर्वाहके लिये ही जब शुद्ध द्रव्य प्राप्त नहीं—शतक्रतुकी यज्ञद्वारा स्पर्धा—अतीतकी कथा हो गयी वह।'

'देवलोकमें अनाहार चल रहा है!' शिथिल स्वर था देवराजका—सुरोंका संबल मानवकी श्रद्धा। हम अमर न होते—धरासे हविष्यकी सुरभिका अभाव कबका हो चुका, अमरावती जनहीन, हो गयी होती।'

'मानव आज सुरोंकी सहायतामें आस्था नहीं करता!' देवर्षि सहजभावसे कह गये।

'हम संतोष कर लेते, यदि अपने श्रमपर उसकी आस्था सात्त्विक होती।' महेन्द्रने उसी हताश स्वरमें उत्तर दिया—देवधानी उसके शुद्ध स्वेदसे भी सुपुष्ट रह सकती है और विशुद्धश्रम—उसकी समता कर सके, ऐसा तो कोई पुण्य नहीं।'

'स्वार्थ कलुषित करता है श्रमको' देवर्षिने इन्द्रकी बात ही स्पष्ट की—'और आज मानवका—आराध्य श्रम नहीं, स्वार्थ हो गया है।'

'देवधानी जनहीन होती जा रही है।' देवराजने देव-सभापर एक दृष्टि डाली—'पुण्यकर्मा मानव यहाँ पधारें और हम उनका स्वागत करें—समस्त सुरोंकी आज उत्कण्ठा है।' मानवके तप और यज्ञकी स्पर्धा, न अपेक्षा। उसके श्रमका सत्कार करेगा देवलोक, किंतु वह श्रम—मानवताका श्रम तो हो!'

'सुर सहायता कर सकते हैं।' देवर्षिके वचन इस बार गूढ़ार्थ लिये थे—'सात्त्विक प्रेरणाओंका संचार जिनका कार्य है वे हताश क्यों हों।'

'सुर केवल प्रेरणा दे सकते हैं और प्रत्येक प्रेरणा अस्वीकृत कर दी जा सकती है, विकृत कर दी जा सकती है।' देवेन्द्रने इस बार प्रार्थना की—सुरोंकी सत्प्रेरणा आज असमर्थ हो गयी है, किंतु सर्वेश सर्वसमर्थ हैं और आप......। मानवको कर्म-स्वातन्त्र्य प्रदान किया है उन परम प्रभने।,

'देवराजकी प्रार्थना भगवान् रमाकान्तके श्रीचरणों तक पहुँचानेमें मुझे प्रसन्नता होगी।' देवर्षिने स्वीकृति

दी और उनके पादुकाद्वयमण्डित चरण मुड़ पड़े। देवताओंके साथ देवराज अभिवादन कर रहे हैं, यह देखना उनके स्वभावमें कहाँ है।

× × ×

'देव! आप जीवोंके परमाश्रय हैं।' क्षीरसिन्धुकी उत्ताल तरङ्गोंने देवर्षिकी पादुका स्थिर भावसे मस्तकपर धारण कर ली थी। भगवान् नारायणने उनका स्वागत किया और अब दुग्धोज्ज्वल आसन स्वीकार करके देवर्षि प्रार्थना कर रहे थे—'प्राणियोंकी पीड़ा अपार है और आपकी अनुकम्पा उसे तत्काल दूर कर सकती है।'

'मैं स्वयं आतुर प्रतीक्षा करता रहता हूँ देवर्षि! कि कोई हाथ उठे और मैं उसे उठा लूँ।' जलद-गम्भीर स्वर करुणापूर्ण—'आप जानते हैं, मेरी उत्कण्ठा। जीवको अपनाकर मेरा आनन्द उल्लसित होता है; किंतु जीवोंको अनुकम्पा अभीष्ट है केवल सिन्धुसुताकी।'

'माताकी कृपा अपनी संततिके लिये कृपण होगी!'

देवर्षिने इस बार आदिपुरुषके पदोंको अङ्कमें लिये स्थिर शान्त श्रीके चरणोंकी ओर दृष्टिकी और उनके चित्तने कहा—'चञ्चलित प्राणी इन्हें 'चञ्चला' कहते हैं।'

'कृपा कृपण हो जाती है देवर्षि, पाद-संवाहन चलता रहा और देवीका स्वर आया—'संतान जब अपने संकट सबल करनेकी कृपा-कामना करती है—माताके समीप कृपण बन जानेके कारण अतिरिक्त कोई और पथ है?

'अज्ञ जीव !' देवर्षि नारदकी अनुकम्पा हताश होना नहीं जानती । वे पुनः परम पुरुषसे प्रार्थना करने लगे थे—'अन्तर्यामीरूपसे जो जन-जनके हृदयमें निवास करते हैं, उनके अतिरिक्त ज्ञानका आलोक देनेमें कौन समर्थ है।'

'अन्तर्यामीने आलोक देनेमें कभी प्रमाद किया है ?' परम प्रभुके अधरोंपर स्मित आया—'उसका स्वर जब मानव न सुने—देवर्षि ! एक मात्र मानव कर्म-स्वतन्त्र प्राणी है। लक्ष-लक्ष योनियोंमें एक स्वतन्त्र योनि—उसे भी पराधीन कर देना उपयुक्त होगा ?'

'मानव आज पथभ्रष्ट !' खिन्नचित्त देवर्षि जैसे अपने आपसे कह रहे हों—मानवकी च्युति—सम्पूर्ण भुवनोंमें, समस्त प्राणियोंमें अव्यवस्था एवं क्लेशका सृजन करता मानव !'

'कर्मस्वातन्त्र्य मिला मनुष्यको।' परम पुरुष जैसे कुछ सूचित करना चाहते हों—'नाना गतियोंके पथोंका चौराहा—जीवन-चौराहेपर खड़ा मानव। वह स्वर्ग जा सकता है, नरक जा सकता है, असुर बन सकता है, पशु-पक्षी या कीट-पतंगोंकी योनिके द्वार खुले हैं, पुनः मानव बन सकता है और अपवर्ग—मेरा यह धाम उसीका स्वत्व है। सब पथ प्रशस्त हैं उसके सम्मुख और उसके पद स्वतन्त्र !'

'आपकी माया उसे प्रवञ्चित करती है।' देवर्षिने उलाहना दिया—'वह उसे भ्रान्तपथकी ओर आकृष्ट करती है।'

'आपकी वाणी सावधान कर सकती है।' परमपुरुषने सूत्र सुनाया—मानवको माया आकृष्ट करे—जीवको नित्यसेविका माया जीवके चरमोत्कर्षकी स्थितिमें वह प्रस्तुत करती है अपनेको सेवामें। सेवाको अस्वीकार करनेमें मानव सहज समर्थ है और उसे सावधान किया जा सकता है। सावधान किया गया है देवर्षि !'

'आपकी शाश्वत वाणी—श्रुतिगिरा वह सुन नहीं पाता आज ; किंतु—'देवर्षिने जैसे कुछ निश्चय कर लिया हो—'इस बार अनुमति दें दासको !'

'शुभं भूयात् !' अनुमति ही नहीं, आशीर्वाद भी प्राप्त हो गया और प्रणिपात करके उठ खड़े हुए देवर्षि।

× × ×

'गेहे गेहे जने जने' भक्तिकी स्थापनाकी प्रतिज्ञा करके परिव्राट्-व्रतधारी वे स्रष्टाके सम्मान्य कुमार नित्य विचरण कर रहे हैं। आपने उनकी वाणी सुनी ? सम्भव है, न सुनी हो। उनका उद्घोष है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

मानवयोनि—जीवनके चौराहेपर खड़ा मानव प्राणी चारों ओर पथ—पथोंके भिन्न-भिन्न गन्तव्य। पद आगे बढ़ानेसे पूर्व देवर्षिके उद्घोषको सुन लेना लाभदायक होगा बन्धु !

पूर्णकाम

'तृष्णाक्षये स्वर्गपदं किमस्ति'

'देवाधिपकी मुखश्री आज म्लान दीखती है!' सुर-गुरुने अमरोंकी अर्चा स्वीकार कर ली थी और महेन्द्रसे अभिवादित होकर वे सिंहासनपर बैठ चुके थे। इन्द्र एवं अन्य देवताओंने भी आसन ग्रहण कर लिया था। सुधर्मा सभामें आज चिन्ताकी अरुचिकर गन्ध है।'

देवता गन्धग्राही होते हैं। सुरभि आघ्राण ही उनका आहार है। अतः यदि उन्हें मनोभावोंकी गन्ध भी आती हो तो कोई आश्चर्यकी बात तो है नहीं।

'भारतवर्ष ही देवधानीका पोषक है।' सुरपतिने खिन्न स्वरमें कहा—'उस कर्मभूमिसे उठी स्वाहा-समन्वित सुरभि ही सुरोंका पोषण करती है; किंतु अनेक बार उसके जन त्रिविष्टपको आशंकाकुल कर देते हैं।'

'असुरोंने उस कर्मभूमिपर आधिपत्यकी कोई योजना बनायी है?' बृहस्पतिका प्रश्न कहता था कि यह चर्चा कुछ देर चलेगी। गन्धर्वोंने अपने वाद्य उठाये और अप्सराएँ एक-एक करके देवसभासे जाने लगीं।

'भगवान वामनने जबसे उपेन्द्रपद स्वीकार करनेका

अनुग्रह किया, असुरोंका साहस हतप्रभ हो गया। इस समय कर्मभूमि उनके लिये असह्य हो गई है।' वासवके सहस्र नेत्रोंमे आशंका साकार थी—'मानव जब अपने स्वरूपमें आ जाता है, हम सुरोंके लिये भी वह दुराधर्ष होता है। इधर ब्रह्मावर्तमें एक ऋषिकुमार सुरसरिके तटपर आ बसा है। उसका तप विरमित ही नहीं होता।'

'मदन-देव और मलयमारुतका स्मरण क्या इस बार देवाधिपको अनावश्यक लगने लगा है?' देवगुरुने पूछा। वे स्वयं इधर दीर्घकालसे अपने आराधनमें लीन थे। उन्हें न अमरावतीका कोई समाचार ज्ञात था और न धराका ही।

'वसन्त उस विप्रके मनको अधिक एकाग्र करता है। शीतल पवन और विकच पुष्पराशि उसे अन्तर्लीन होनेकी प्रेरणा देती है।' महेन्द्र कह रहे थे—'मन्मथके समस्त शर कुसुम-धनुषपर ही स्तम्भित हो गये उसकी आश्रम-सीमामें और अप्सराओंका संगीत जैसे ही प्रारम्भ हुआ, वह स्वयं करताल उठाये उनके बीच आ गया। नेत्र बंद किये उद्दाम नृत्य-कीर्तनमें तन्मय उस अद्भुत मानवको स्वर्ग-सुन्दरियाँ कैसे प्रभावित करतीं। उसे अपने ही शरीरकी सुधि नहीं रही तो फिर उसके आस-पास देवांगनाएँ सावरण हों अथवा निरावरण—क्या अर्थ रह गया इसका।'

'तपस्वी शीघ्र क्रुद्ध होता है और क्रोध कामकी अपेक्षा तपस्तेजका अधिक नाशक है।' देवगुरुने एक और मार्ग सुझाया। 'ठीक है कि महेन्द्रने यह कार्य कभी

कामानुजको नहीं दिया ; किंतु जब अग्रज विफल हो गया......।'

'अनुजके लिये अवकाश भी तो हो।' इन्द्र बीचमें ही बोले—'वह कहाँ कभी रुष्ट होता है। अद्भुत तापस यदि वह न होता, हमें इतनी चिन्ता क्यों होनी थी। रूक्षता उसके हृदयका स्पर्श नहीं करती। चाहे जब, चाहे जिस नियमको स्थगित करके उपस्थित श्रोताको कोई कथा सुनाने लगेगा अथवा स्वयं करताल उठा लेगा। गद्गद कण्ठ, रोमाञ्चित देह और अश्रु प्रवाह तो मानो रुकना जानते ही नहीं।'

'आप नहीं मानते कि वह अमरावतीका अधिकारी हो गया है!' इस बार सुरगुरूका स्वर कुछ भिन्न प्रकार-का था—'समुचित अधिकारीको पुरस्कृत करनेमें यदि सुरेश्वर प्रमाद करने लगें, लोकपालोंकी नियुक्ति पितामह-ने क्यों की। उस तापसका पार्थिव देह साधनपूत हो चुका। सत्त्वशुद्ध शरीर यहां आकर श्रीवृद्धि ही करेगा देवधानीकी।'

'वे वन्दनीय यदि स्वीकार कर लें, हम उनका स्वागत करके अपनेको कृतार्थ मानेंगे।' महेन्द्रने गुरुके चरणोंमें मस्तक झुकाया। एक क्षणको भी उन्होंने त्रिविष्टपका स्मरण किया होता, उन्हें यह दिव्य भूमि अलभ्य नहीं थी। किंतु वे तो तपोधन— उनके संकल्पकी अपेक्षा मुझे क्यों करनी चाहिये! श्रीचरण कुछ काल मेरे सदनको पवित्र करें! मातलि मेरा रथ लेकर धराको धन्य करने जा रहे हैं।'

मातलिको आदेशकी अपेक्षा नहीं थी। देवता संकल्प-साक्षी होते हैं। देवराजके चित्तमें तो संकल्प उठा, मातलिके लिये वही पर्याप्त आदेश था।

× × ×

'भगवन् आप......।' तपस्वी तनिक अस्तव्यस्त उठ खड़ा हुआ। वह श्रद्धाप्राण—ध्यानसे नेत्र खोलते ही जब एक रत्नाभरणभूषित ज्योतिर्देह पुरुष सम्मुख दीख पड़ा, त्वरापूर्वक अभिवादनके लिये उठा वह विप्रकुमार।

'मैं प्रणम्य नहीं देव!' मातलिने झटपट दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुका दिया—देवराजका सारथि है यह जन और इसे मातलि कहा जाता है। श्रीचरणोंके दर्शन करके आज यह सुर-सूत धन्य हुआ।'

'आप मानव-वन्द्य हैं और आज तो अतिथि हैं इस अकिंचनके।' तपस्वीने भी प्रणाम किया और आसन दिया। 'सुरसरिका जल और दो धराके क्षुद्र सुमन—यहाँ आपका सत्कार करनेको और है ही क्या।'

'आपके प्रेमाश्रुसे सिंचित ये रजःकण स्रष्टाके भी भालको भूषित करने योग्य हैं।' मातलिने धूलि उठाकर मस्तकपर लगा ली; किंतु तपस्वीके द्वारा दिया अर्घ्य पाद्यादि उन्हें स्वीकार करना पड़ा।'

'आप कोई आदेश देकर इस जनको कृतार्थ करेंगे।' नम्रताकी मूर्ति तापस अर्चाके अनन्तर अनुरोध कर रहा था।

'प्रार्थना करने ही आया हूँ।' मातलिको स्वयं उत्कण्ठा थी—देवराजने अपना रथ भेजा है कि श्रीचरण अब अमरावतीको अपनी उपस्थितिसे पवित्र करनेकी कृपा करें।'

'मनुकी संतानको सुरोंका आदेश श्रद्धापूर्वक स्वीकार करना चाहिये।' तपस्वीने कोई आपत्ति नहीं की। उन परिग्रहरहित एकाकी साधुको कोई तैयारी तो करनी ही नहीं थी। मातलिके पीछे वे रथपर विराजमान हो गये। सशरीर स्वर्ग जानेमें कोई महत्ता भी है, यह बात उनके मनमें आयी ही नहीं।

'देवधानी धन्य हुई।' महेन्द्रने आगे आकर स्वागत किया। उन्हें आशा ही नहीं थी यह युवा तपस्वी इतनी सरलतासे उनका अनुरोध स्वीकार कर लेगा।

'आपको कोई असुविधा न हो, देवराज इसका ध्यान रखेंगे!' सुरगुरुने अङ्कमाल दी प्रणिपात करते विप्र-कुमारको। 'आप देवधानी देख लें। जो सौंध अनुकूल लगे वह आपके लिये सुरक्षित है, ऐसा ही मानें। यहाँ सभी आपका सख्य प्राप्त करके प्रसन्न होंगे और जिसे भी सेवाका अवसर प्राप्त होगा, वही कृतार्थ समझेगा अपनेको।'

'मैं तो आपका आज्ञानुवर्ती हूं।' तपस्वीने बद्धाञ्जलि निवेदन किया—'मेरे योग्य जो सेवा सुरगुरु अथवा सुराधिप निर्दिष्ट करें! वैसे मुझे अपने अनुकूल नभो-गंगाका वह रम्यतट लगता है, जिसे मैं नगर-परिखाके बाह्य भागमें देख आया हूँ। यदि आप सब अनुमति दें,

मुझे वहाँ आसन लगानेमें प्रसान्नता होगी।'

महेन्द्रने सुरगुरुकी ओर देखा—यह मानव तो इस देवभूमिमें भी तपोवन बनानेका स्वप्न देखता प्रतीत होता है।'

'इनकी इच्छा का अतिक्रमण करनेकी शक्ति सुरोंमें नहीं है, यह हमें स्मरण रखना होगा।' महर्षि बृहस्पतिने देवराजको संकल्पकी भाषामें ही उत्तर दे दिया और तपस्वीसे बोले—जहाँ आप प्रसन्न हों हमें कोई बाधा नहीं।'

× × ×

'हम बार-बार श्वासरोधकी पीड़ासे त्रस्त होती हैं।' अप्सराओंने अभियोग उपस्थित किया—'मानव-तपस्वी जब श्वासरोध करके वृत्तियोंको केन्द्रित करता है, हमारे लिये अपने अंग हिलाना कठिन हो जाता है और वह प्रायः अपने आसनपर बैठा ही रहता है।'

'सुरकाननके सुमन म्लान हो गये हैं।' किन्नरोंने देवराजसे निवेदन किया—उपोषित मानवका उष्णश्वास सुरपादपके लिये भी असह्य होता जा रहा है।'

'चित्तमें आनन्दका उत्स आवे तो संगीतके स्वर रसको साकार करते हैं।' गन्धर्वोंने वाद्य त्याग दिये सुधर्मा सभामें देवेन्द्रके सम्मुख—'धरासे आया अतिथि चित्तवृत्तिनिरोध कर लेता है और हमारे मानसमें कोई वृत्ति उठ ही नहीं पाती।'

'अमरावती अब अमरोंके निवासके लिये अयोग्य होती जा रही है।' देवता अत्यन्त क्लेश भरे स्वरमें कह रहे थे—'हम सब सत्त्ववृत्ति हैं। मानव जब सत्त्वका भी रोध करके ऊपर उठता है, लगता हमारी सत्ता ही समाप्त हो जायगी।'

'अदम्य है तापसका अनुभव!' स्वयं देवगुरुने स्वीकार किया—'सम्पूर्ण अमरावतीका वातावरण उसकी उपस्थितिमात्रसे उसके द्वारा नियन्त्रित होने लगा है।'

'हमारे उद्यान अब उजड़े लगते हैं। हमारे सदन क्रीड़ाविरहित हैं। सुधातकमें हमें अब स्वाद नहीं प्राप्त होता।' सुरेन्द्र स्वयं संत्रस्त हो उठे थे—'अपने आवासमें तपस्वीका प्रभाव हमें बलात् भोगवर्जित किये दे रहा है।'

'सुर साधनाका शान्त आनन्द आस्वादन नहीं कर पाते।' देवगुरुने समस्याको समझ लिया था—'और तपस्वीकी परम तत्त्वसे एकात्मता उन्हें गुणके हीन सुखमें रहने नहीं देती। फलतः एक अद्भुत आकुलताका अनुभव हम सब करने लगे हैं।'

'वे तपोधन करते क्या हैं?' देवगुरुने कहा—'हम निकटसे इसे एक बार भलीभाँति देख लें।'

'वे जबसे आये हैं, उन्होंने एक भी संकल्प नहीं किया।' गन्धर्वश्रेष्ठ हूहूने बताया, क्योंकि तपस्वीकी सेवाका विशेष भार उन्हींपर था। इस दिव्यभूमिमें आकर उन्हें न क्षुधा व्याप्त हो सकती और न पिपासा ही। पार्थिव मल भी यहाँ उनके श्रीअंगके अन्तर्वाह्य स्पर्शसे वञ्चित है। भिक्षा करनेका भला वे क्यों स्मरण करें। स्नान

अवश्य वे बार-बार करते हैं। व्योमगंगाके तटको सम्भवतः इस सुविधाकी दृष्टिसे ही उन्होंने चुना।'

'आपने उन्हें सुधापानका अधिकारी नहीं माना?' देवगुरुने उपालम्भकी दृष्टिसे देवराजको देखा।

'वे इच्छा करते, सुरा-सुरांगना-सुरतरुसुमन—सभी अमरावतीके भोग सार्थक बनते।' शक्रका स्वर शिथिल था—'इच्छाके अभावमें कोई विषय स्वाद नहीं दे पाता। सृष्टिकर्ताने इसीलिये स्वर्गकी मर्यादा निश्चित की—इच्छा करते हो भोगकी उपलब्धि। अनिच्छित भोग तो हम किसीको दे नहीं पाते और वे अद्भुत अतिथि हैं कि इच्छा करना जैसे उन्हें आता ही नहीं।'

'वे कर्मभूमि भेजे नहीं जा सकते, क्योंकि अमरपुर आकर कोई पुण्य क्षीण हुए बिना धरापर जाता नहीं। उन अमित प्रभावके पुण्य!' सुरगुरु चिन्तित हुए—'स्वर्ग उनके तेजको सहन नहीं कर पा रहा है और ऊर्ध्व लोकोमें किसीको हम भेजनेकी शक्ति नहीं रखते!'

'जो अधिकारी हैं, उन्हें कोई भेजे; इसकी अपेक्षा कहाँ है!' सहसा देवर्षिका स्वर आया। वे नित्य परिव्राट् अकस्मात् अमरावती आ पहुँचे थे। सुरेन्द्रको आश्वासन प्राप्त हुआ।

'भगवन्! हमने एक मानव-तपस्वीको सशरीर ले आनेकी भूल की!' देवगुरु संकोचपूर्वक बोले।

'वह क्षीण-तृष्ण है और जब तृष्णा ही न रहे चित्तमें स्वर्ग उसके लिये सत्ताशून्य हो उठता है।' देवर्षिने वाक्य पूरा किया—'उसकी उपस्थितिने देवधानीकी सत्ता संदिग्ध

बना दी है ; किंतु उस महाप्राणका स्वागत करनेके लिये श्वेतद्वीपके षड्रूर्मिरहित क्षीण तृष्ण पावनप्राण समुत्सुक हैं। मैं उसे लेने ही आया हूँ।'

तपस्वीको कितनी प्रसन्नता हुई देवर्षिके साथ प्रस्थान करनेमें। भगवान् नारायणने स्वयं उसे स्मरण किया था। उसका भाग्य.....................।

धर्म-धारक

'आज लगभग तेंगका पूरा परिवार ही नष्ट हो गया !' बात मनुष्योंमें नहीं, देवताओंमें चल रही थी। 'वह कृष्णवर्णा दीर्घांगी कंकालिनी लताकण्टकभूषणा चामुण्डा किसीपर कृपा करना नहीं जानती। उसने मेरी अनुनयको उपेक्षाके निष्करुण अट्टहासमें उड़ा दिया। आप सब देखते ही हैं कि किस शीघ्रतासे वह प्राणियोंके रक्त-माँस चाटती जा रही है।'

'तुम्हारे यहाँ तो अद्भुत सुइयाँ एवं औषधियाँ लेकर एक पूरा दल चिकित्सकोंका आ गया है।' दूसरे देवताने अधिक खिन्न स्वरमें कहा—'मेरे क्षेत्रकी ओर तो मानव शासक भी ध्यान नहीं दे रहा। पूरा जनपद प्रायः खँडहर हो चुका है और दो-चार दिनोंमें रुद्रके गण जब वहाँ अधिकार कर लेंगे, मुझे भटकते घूमना पड़ेगा।'

'उन चिकित्सकोंमेंसे तीनकी बलि विषूचिकाने ले ली। पाँच और शय्यापर पहुँच चुके हैं।' पहिले देवताका स्वर शिथिल बना रहा—'मानवके ये प्रयत्न चामुण्डाकी चरणगतिका अवरोध बन पायेंगे ? वह कहाँ समझता है कि उसकी चेष्टा तभी सफल होती है, जब भगवान् धर्म

सानुकूल हों। वे रूठे और रुद्रके गणोंका कोई-न-कोई दल आया।'

'हम सब अब क्या कर सकते हैं!' एक तीसरेका दीर्घ निःश्वासयुक्त स्वर था—'हमारे पूरे प्रदेशपर लगातार चार वर्षसे देवराजका प्रकोप है। मेघ आते हैं और चले जाते हैं। पशु-पक्षी तो पहिले ही नहीं रह गये थे; अब मनुष्य क्षुद्र कीटोंके समान मृत्युके ग्रास बन रहे हैं।'

आपको अद्‌भुत लग सकता है; किंतु यह सत्य है कि प्रत्येक नगर एवं ग्रामका एक क्षेत्रपाल होता है। प्रत्येक गृहका एक अधिदेवता होता है। नगर, ग्राम गृह स्वच्छ हों, सम्पन्न हों तो उसे प्रसन्नता होती है। वहाँ दुःख, दरिद्रता, गंदगी हो तो उसको कष्ट होता है। अधिदेवता प्रसन्न हो तो नगर, ग्राम, गृहके निवासी सुखी रहते हैं और वह रुष्ट हो तो निवासियोंको रोग, शोक चिन्ता सताती है।

उस समय हिमालयके दुर्गम प्रदेशमें चीन के कई प्रान्तोंके क्षेत्रपाल देवताओंका समूह एकत्र हुआ था। वे विपत्तिमें पड़ गये थे। मनुष्य उनकी सत्ता माने या नहीं माने, उनकी सत्ता और कार्यमें कोई बाधा नहीं पड़ती; किंतु जब मनुष्य अधर्मपर उतर आता है—महामारी, अकाल आदि आपत्तियाँ उसे शिकार बना लेती हैं। ऐसी अवस्थामें क्षेत्रपाल भी संकटमें पड़ जाते हैं। गृह रहेगा तो गृहका अधिदेवता रहेगा। गृह खँडहर हो जाय या जनहीन हो जाय तो वहाँ प्रेत निवास कर लेंगे। क्षेत्रपाल निर्वासित हो जायगा। यही अवस्था ग्राम तथा नगरके देवताओंकी

भी है। जनहीन नगर तथा ग्राम रुद्रगणोंके स्वत्व हैं।

महामारी, भुखमरीसे चीनके ग्राम-के-ग्राम सूने होते जा रहे थे। अधिकारियोंके बहुत प्रतिबन्ध रखनेपर भी यह समाचार विश्वको मिल ही गया कि अकाल तथा है जैसे वहाँ अत्याधिक जनहानि हुई है। इतनी बड़ी जन-हानि, जो कई करोड़की समझी जा रही है।

क्षेत्रपाल अधिदेवताओंपर भी अकस्मात् इतनी बड़ी विपत्ति एक साथ कभी नहीं आयी थी। वे क्या करें, यह निर्णय करनेके लिये उनका समुदाय एकत्र हुआ था। प्रलयका समय आया नहीं, आकस्मिक खण्ड-प्रलयकी सूचना देकर भगवान् रुद्रने उन्हें धराका त्याग करनेका अभी कोई आदेश नहीं दिया और उनके आवास नष्ट होते जा रहे हैं। उन्हें लगता है कि रुद्रगण उसे शीघ्र ही उन्हें निर्वासित कर देने वाले हैं।

'महेश्वरकी शरणमें यदि हम लोग चलें!' एकने बड़े संकोचसे बात प्रारम्भकी—'वे आशुतोष परम कृपालु हैं।'

'वे समाधिमें हैं!' तिब्बतीय क्षेत्रके एक क्षेत्रपालने सूचना दी—ऐसा न भी होता तो वे हमें कदाचित ही मानवकी सहायता करनेको कहते। मानवने कैलासके आस-पास जो हत्याएं की हैं, तपस्वियोंका आहार रोककर जो उनका सामूहिक विनाश उसने किया है, उसकी उपेक्षा कैसे की जा सकती है।'

'किसीका कोई दोष वे सर्वाधार कभी नहीं देखते। दूसरेके स्वरमें यह कहते कोई उल्लास नहीं था। किंतु

जब वे उत्थित ही नहीं, उनके समीप जानेका प्रश्न नहीं उठता और हम सीधे उनके समीप जा भी कैसे सकते हैं।' हमें अपनी समस्या नियमानुसार देवराजके समीप उपस्थित करनी चाहिये।'

'और देवराज अत्यन्त रुष्ट हैं इसे देशके मानवोंपर इन दिनों!' एक नगरपाल कह रहे थे—'अवर्षण बनकर उनका क्रोध इतने असह्य रूपमें आया है कि मेरे पास अब थोड़े-से गृह रह गये हैं। मेरे नगरकी जन-संख्या सहस्रोंके स्थानमें 'शत' में गणना की जायगी। देवराजके समीप जाकर कोई आश्वासन प्राप्त करनेकी आशा कहाँ है।'

'मानव हमें मानता या न मानता!' एक वृद्ध क्षेत्रपाल बोले—'वह भगवान् धर्मसे तो विमुख न होता। वह अहिंसा, दया, सत्य, क्षमा आदिको अपनाये रखता, हमने कहाँ उसकी उपेक्षापर कभी क्रोध किया है।'

'हम सब धर्मके ही समीप चलें।' प्रस्ताव आया और स्वीकृत हो गया।

× × ×

देवताओंको भी बहुत परिश्रम करना पड़ा धर्मको प्राप्त करनेके लिये। उनका हिमधवल विशाल वृषभ देह सूखकर अत्यन्त कृश हो गया था। चारमेंसे उनके तीन चरण तो पहले ही नष्ट हो गये थे, एक चरण भी इतना दुर्बल हो चुका था कि उसके बलपर वे किसी प्रकार ही कुछ हिल-डुल सकते थे। उनके पूरे शरीरपर घाव थे।

'आप सबका स्वागत !' नेत्रोंमें अश्रु भरकर धर्मने क्षेत्रपालोंको देखते ही कहा—'आपके कष्टका अनुमान मैं अपनी अवस्थासे ही कर सकता हूँ।'

'आपने इस भूमिका लगभग परित्याग ही कर दिया और जब आप प्रजाका धारण नहीं करते......!' एक युवक क्षेत्रपाल चपलतापूर्वक बोलने लगे।

'मैं कभी किसीका परित्याग नहीं करता!' धर्मने उन्हें बीचमें ही रोक दिया—'मैं प्रजाका धारण पोषण ही करना जानता हूँ। इसीसे मेरा नाम सृष्टिकर्त्ताने धर्म रखा है; किंतु मानव स्वयं जब मेरा त्याग कर देता है मोहके वश होकर, मैं कर भी क्या सकता हूँ? कर्म-स्वतन्त्र मानवको विवश करनेका विधान नहीं है और उसने अपने कर्मोंसे मेरी जो अवस्था कर दी है, आप देख रहे हैं।'

'हम सब आपके ही आश्रित हैं!' बड़े संकोचपूर्वक क्षेत्रपालोंमेंसे एक वृद्धने कहा—'यदि आप हमारी ओर नहीं देखेंगे ....।'

'हम सब हरिके आश्रित हैं।' धर्मके स्वरमें अतिशय नम्रता थी—'मनुष्य आज आत्महत्या करनेपर उतर आया है। उसने पक्षियोंको समाप्त कर दिया, बिना यह सोचे कि वे कृषि तथा मानव-प्राणोंके शत्रु कीटवर्गपर अंकुश रखते हैं। उसने यन्त्रोंके भरोसे पशुओंको समाप्त कर दिया, बिना यह ध्यान दिये कि भूमिकी उर्वराशक्ति उन पशुओंका ही वरदान है। किंतु मनुष्यको दीखता कहाँ है कि वनराज नहीं रहता तो वन उजड़ने लगते हैं।

अब इस पीतवर्णी मानवोंके समूहमें यहाँ तक दुर्बुद्धि आ गयी है कि वृद्ध, अपंग रोगी मानवको भी अनावश्यक मानकर दुर्गम स्थलोंमें निर्वासित कर रहा है क्षुधा-कष्टसे मृत्यु प्राप्त करनेके लिये। इस बर्बरतासे पूर्ण वातावरणमें मुझे अपनी प्राण-रक्षाके लिये इस एकान्तका आश्रय लेना पड़ा है।'

'आप यदि प्रजाका त्याग कर देंगे !' बोला नहीं गया क्षेत्रपालसे। 'कितनी भयंकर बात है—धर्म ही यदि प्रजाका त्याग कर दें तो प्रजा रहेगी कैसे। मनुष्यके अन्तःकरणमें यदि किसी प्रकार आपकी तनिक छाया भी प्रवेश करे !'

क्षेत्रपालोंको एकमात्र धर्मका आश्रय है। मनुष्य जड़वादी हो सकता है; किंतु देवता तो सत्य देखनेमें समर्थ हैं। वे देख सकते हैं कि मनुष्योंकी दया, दान, प्राणि-पोषण आदि उसे स्वयं पुष्ट करते हैं। वह धर्म ही सानुकूल वृष्टि तथा पृथ्वीकी उर्वराशक्ति बनता है और मनुष्यकी स्वार्थपरता, हिंसा, क्रूरता आदि गगन तथा धरा दोनोंके रसको चूस लेते हैं। इनसे तो केवल प्राणहारी, अन्न-विनाशी महामारीके रोगाणु तथा टिड्डी-कीट आदि ही अभिवृद्धि पाते हैं।

'मानव विश्वस्रष्टाकी श्रेष्ठतम कृति है। स्वयं नारायणका निवास है उसके अन्तःकरणमें। वह उन्हें कितना भी अस्वीकार करे; किन्तु उन जगदात्माकी ज्योति नरमें व्यक्त हुई है।' धर्म बड़े विश्वासपूर्ण स्थिर स्वरमें कह रहे थे—'स्वभावमें चाहे जितनी विकृति आ

गयी हो, मूलतः मानवमें देवत्व है। उसके देवत्वमें विश्वास नहीं खोया जा सकता। अतएव मैं उनका पूर्णतः त्याग कभी नहीं करता। समयकी प्रतीक्षा अवश्य करनी पड़ती है और मैं यही कर रहा हूँ।'

समयकी प्रतीक्षा ! क्षेत्रपालोंके समुदायने दीर्घ निःश्वास लिया—'यदि भगवती चामुण्डा भी समयकी प्रतीक्षा करतीं। किंतु वे तो आज हमारे आवास उजाड़ती चली जा रही हैं। आज हम निर्वासित होनेके समीप हैं।'

'अनेक बार महाकालीको यह अप्रिय कार्य करना पड़ता है।' धर्मका पूरा शरीर कम्पित हो गया। अधर्मसे कलुषित धराको उनके श्रीचरण स्वच्छ करते हैं। वे महामाया आज मानवके हृदयको मोहाच्छन्न करके अपने महाताण्डवकी उसीके हाथों तैयारी करवा रही है। विनाशके प्रचण्ड साधन मानवके कर निर्माण कर रहे हैं; किंतु विश्वके पालक प्रसुप्त नहीं हुआ करते। उनकी इच्छाका संकेत हम सुरोंको भी प्राप्त नहीं होता, यह भिन्न बात है। किंतु हम सबके यही परमाश्रय है। हमें उनका आह्वान करनेके लिये तो कहीं जाना नहीं है।'

क्षेत्रपालों का समुदाय भी धर्मके साथ ही उन जगद्ध्याता के ध्यानमें तन्मय हो गया।

× × ×

'धर्म ही प्रजाका धारण करते हैं ! धर्म ही प्रजाका धारण करेंगे।' एक अव्यक्त दिव्य वाणी अन्तःकरणमें ही

उठी क्षेत्रपालोंके । 'धर्म अविनाशी हैं, शाश्वत हैं मैं ही स्वयं धर्म हूँ ।'

पता नहीं क्षेत्रपालोंने इस रहस्यात्मक परावाणीका क्या अर्थ समझा । उन्हें आश्वासन प्राप्त हुआ या नहीं, कैसे कहा जा सकता है । लेकिन जहाँतक अपनी बुद्धिकी बात है, लगता यह है कि मनुष्यको यदि जीवित रहना है, मानव सभ्यताको बनाये रखना है तो धर्मका आश्रय लेना होगा, अन्यथा धर्म तो मिटेंगे नहीं, मानवता भले ध्वंसको प्राप्त हो जाय; क्योंकि प्रजा तो धर्मके धारण करनेपर ही रहेगी ।

जागे हानि न लाभ कछु

राजकुमार श्वेतके आनन्दका पार नहीं है। आज उनका अभीष्ट पूर्ण हुआ। आज उनकी तपस्या सार्थक हुई। उन्हें लगता है कि आज उनका जीवन सफल हो गया। उन्होंने भगवान् पुरारिसे वरदान प्राप्त किया है कि पृथ्वीपर वे सहस्र वर्ष एकच्छत्र सम्राट रहेंगे और सौ अश्वमेध निर्विघ्न सम्पन्न कर सकेंगे। भविष्यमें इन्द्रासन उनका स्वत्व बनेगा।

पिता परम शिवभक्त हैं। श्वेतने जब गुरुगृहकी शिक्षा सम्पन्न करके कुछ काल तपोवनमें रहनेकी अभिलाषा व्यक्त की, तब पिताने अनुमति और आशीर्वाद दिया। आज वह आशीर्वाद फलित हुआ है।

पूर्णकाम कुमार श्वेत अपने उटजसे ताम्रपर्णी में स्नान करने जा रहे हैं। आनन्दके अतिरेकमें पद पथमें त्वरित पड़ रहे हैं। 'स्नान, मध्यान्ह-संध्या और फिर गुरुदेवके आश्रम पहुँचकर उनके चरणोंमें प्रणति ! वहाँसे कोई सहाध्यायी स्वयं समाचार देने राजधानी दौड़ जायगा। रथ आ जायगा लेनेके लिये। सम्भव है स्वयं महाराज विप्रवृन्दके साथ लेने पधारें!' श्वेतकी कल्पना, पता नहीं

क्या-क्या सोच रही है।

'भविष्यके देवेन्द्र !' सहसा एक झींगुरका स्वर श्वेतके कानोंमें पड़ा। स्वरमें उन्हें वेदना लगी, व्यंग लगा। प्राणियों की भाषाका ज्ञान गुरुदेवसे मिल चुका था। श्वेतके पैर रुक गये। उनकी सफलताका संवाद क्या देवताओंने जगतीमें फैलाया है! चकित से वे पीछे घूमे।

'भूतकालके इन्द्रका सम्मान तुम भले न करते; किंतु एक प्राणीको इस प्रकार आहत करना तो तुम्हें शोभा नहीं देता!' झींगुरका एक पैर आहत हो गया था। असावधानी के कारण श्वेतका पैर पड़ गया था उसके ऊपर। वह धूलिमें किसी प्रकार एक ओर घिसटता जा रहा था।

आप मुझे क्षमा करें !' श्वेतने उस कीटकी भाषामें ही उत्तर दिया। 'आपका परिचय पानेका अधिकारी यदि मैं होऊँ……।'

'इस शिष्टताकी आवश्यकता एक कीड़के साथ व्यवहार करनेमें नहीं है!' झींगुरने घिसटना बंद कर दिया और बोला—'इन्द्रत्व एक स्वप्न था और यह कीटदेह भी एक स्वप्न ही है। वैसे मैं अब भी इन्द्र हूँ।'

'आप इस दशामें इन्द्र हैं!' राजकुमार श्वतको आश्चर्य हुआ। उन्हें संदेह भी हुआ कि कहीं शतक्रतु पुरन्दर यह रूप धारण करके उनकी कोई परोक्षा लेने तो नहीं आ गये हैं। स्वतः स्वर निकल गया—'मैं आपकी वन्दना करता हूँ।'

'मैं आपका वन्दनीय नहीं हूँ।' उस कीटने कहा—'मुझे कोई खेद नहीं कि आपके पदसे मैं आहत हो गया। प्राणिमात्रके परम वन्दनीय भगवान् शशाङ्कशेखरने आपको आज ही दर्शन दिये हैं, अतः आपका चरणस्पर्श मेरा सौभाग्य ही है।'

'महाभाग!' श्वेत समझ नहीं पा रहे थे कि यह कीट-वेशमें किससे उनकी बातचीत हो रही है।

'आप कोई शंका न करें।' झींगुरने राजकुमारकी चकित भंगिमा लक्षित कर ली—'इस समय मैं एक घृणित कीट मात्र हूँ; किंतु इस देहमें दो क्षण पूर्व मैं उस सुन्दर, सुरभित, सुकोमल, सुरंग पुष्पपर बैठा था जो तृणशाखापर मार्गमें झूम रहा है। किस इन्द्रके सिंहासनसे वह हीन गौरव है? उसपर बैठा मैं झिल्ली राग आनन्दसे अलाप रहा था। मेरी सात प्रेयसियाँ मेरे चारों ओर फुदक रही थीं। आप आये तो वे कूदकर तृणों में अदृश्य हो गयीं। मेरा एक पैर आहत हो गया। जैसे असुरोंके आक्रमणसे आहत-पराजित पुरन्दर मेरुकी गुहामें आश्रय लेते हैं, मैं भी उस भू-विवर (दरार) में तबतक के लिये जा रहा हूँ, जबतक मेरा यह पैर ठीक न हो जाय और मैं कूदकर अपने पुष्पासनपर पहुँचने योग्य न हो जाऊँ। इन्द्रके समान ही भोगवञ्चित इस समय हो गया मैं।'

'तो यह वाग्मी सामान्य कीट ही है!' श्वेतने मनमें ही सोचा। उनके चित्तको इससे आश्वासन मिला। 'आप पहिले कभी देवराज रहे हैं!'

'रहा हूँ।' झींगुरने उत्तर दिया—'किंतु देवराजका

पद कुछ इतना गौरवमय नहीं है, जितना आप समझ रहे हैं। उसके भोगोंमें और इस देहके भोगोंमें अन्तर ही क्या है ? एक मन्वन्तर देवाधिप रहा और एक ऋषिका तनिक अपराध हो गया, उनको उचित सम्मान देनेमें किञ्चित् प्रमाद बन गया तो अब कीट बन चुका हूँ।'

'आपकी प्रज्ञा एवं स्मृति विलक्षण है !' श्वेतके मनमें इस कीटके प्रति पुनः गौरवबुद्धि जाग्रत् हुई। वह इस समय भले कीट हो, देवराज रह चुका है। उससे अनेक अनुभव प्राप्त कर सकता है श्वेत।

'यही एक तथ्य है और वह भगवान् गङ्गाधरकी अनुकम्पाका परिणाम है।' झींगुरने बतलाया—'अन्यथा इन्द्रत्व एक स्वप्न था। उससे शापके द्वारा कीटदेहमें आगमन भी एक स्वप्न है। यह राजकुमार श्वेतके पदसे आहत होकर उनसे मिलना भी स्वप्न और राजकुमार भी स्वप्न देखते हैं चक्रवर्ती पदका, इन्द्रत्वका तथा एक कीटसे वार्तालाप करनेका। स्वप्नका जैसा लाभ, वैसी हानि। इसमें हर्ष-विषादको स्थान कहाँ है।'

'स्वप्नके-जैसा लाभ और स्वप्नके समान हानि !' श्वेतकी समझमें बातका कोई भी अंश नहीं आया। 'आप कहना यह चाहते हैं कि मैंने जो अध्ययन किया, तप किया और भगवान् शिवने प्रत्यक्ष मुझे दर्शन दिये, वह सब स्वप्न है और उस वरदानसे जो चक्रवर्ती पद तथा कालान्तरमें इन्द्रत्व प्राप्त होगा, वह सब भी स्वप्न ही होगा ? मैं अश्वमेघ यज्ञ भी सौ बार काल्पनिक ही करूँगा !'

'इसमें सदाशिवकी अनुकम्पामात्र सत्य है !' कीट

कह रहा था—'कोई अद्भुत बात मैं नहीं कह रहा हूं। मैंने भी इसी प्रकार अध्ययन किया था, तपस्या की थी और मैं चक्रवर्ती सम्राट हुआ था। सम्राट न होता तो सौ अश्वमेध कर कैसे पाता और इन्द्र तो सर्वदा शतक्रतु होता है। इस सबमें आशुतोषकी अहैतुकी कृपा जो मुझे प्राप्त हुई, वही सत्य है। उसीका यह परिणाम है कि मुझे पिछले स्वप्नोंकी स्मृति है और यह मेरा कीटदेह स्वप्न है, इसे मैं समझ सका हूँ।'

'किंतु यह तथ्य अभी मेरी बुद्धि ग्रहण नहीं कर पा रही है!' श्वेतमें जिज्ञासा जाग्रत् होने लगी थी।

'स्वाभाविक है!' कीट बोला—'स्वप्न देखते समय कदाचित ही यह बुद्धि आती है कि जो दृश्य सम्मुख है, वह स्वप्न है। जाग्रत् हुए बिना स्वप्नके हानि-लाभ उस स्वप्नकालमें तो वास्तविक बने ही रहते हैं।'

'यह जागरण कैसे हो!' विनम्र स्वर हो चुका था श्वेतका। वह जानता था कि ज्ञान श्रद्धालु एव विनया-वनतको ही प्राप्त होता है।

'आप देख ही रहे हैं कि मेरा यह देह तामस देह है और इस समय आहत पैरकी व्यथा भी मुझे चञ्चल कर रही है।' झींगुरने समझाया—'आपमें जिज्ञासा है, अधिकार है और तत्त्वज्ञ पुरुषोंका भारतमें कभी अभाव नहीं रहा है। अत: आप अब मुझे अनुमति दें!'

'झींगुरने श्वेतकी अनुमतिकी अपेक्षा नहीं की। वह एक पैर घसीटता समीपके दरारमें धीरेसे प्रवेश कर गया दो क्षण श्वेत वहीं सिर झुकाये खड़े रहे। अब सरिताकी

ग्रोर उठते उनके पद शिथिल थे और सावधान थे। दृष्टिपूत स्थलपर ही पादक्षेप करना चाहिये, इस आदेशका प्रथम अतिक्रमण ही उन्हें खिन्न बनाये दे रहा था।

× × ×

'मुझे चक्रवर्ती सम्राटका पद नहीं चाहिये। इन्द्रत्वकी मेरी अभिलाषा भी मर गयी!' श्वेतका वैराग्य सच्चा था। हम आप बड़ी सरलतासे कह देते हैं यही बात—प्राय: साधकोंके मुखसे यह सुनता हूँ; किंतु जो भिक्षुक पैसे-पैसेको जन-जनके सम्मुख हाथ फैलाता हुआ गिड़-गिड़ाता है, वह भी कहता है—'मुझे करोड़पति नहीं बनना है।' यह न वैराग्य है, न त्याग। अपनी सामर्थ्य जिसका स्वप्न भी देख न पाती, उसका लोभ मनमें जागता नहीं। यदि वह प्राप्य लगने लगे—रुपयेका लोभी स्वर्णकी खदान छोड़ पायेगा? किंतु श्वेतको तो चक्रवर्ती पद तथा इन्द्रत्वका वरदान प्राप्त हो चुका था। उनका वैराग्य उपलब्धका त्याग कर रहा था।

'मैं मूर्ख नहीं बनूंगा!' श्वेतका संकल्प दृढ़ था—'जागरण क्या! बिना जाग्रत् हुए सत्यका स्वरूप अवगत नहीं हो सकता। मुझे जागृति चाहिये!

'वत्स! तुम खिन्न प्रतीत होते हो! श्वेत स्नान-संध्याके उपरान्त सीधे गुरुदेवके आश्रम पहुँचे थे। अपने पदोंमें प्रणत शिष्यको ऋषिने आशीर्वाद देकर उठाया।

किंतु तपस्याके लिये गया यह राजकुमार खिन्न क्यों लौटा ? पूछा ऋषिने—'कोई विघ्न बाधा दे रहा है तुम्हें ?'

'आपका अनुग्रह जिनकी सुरक्षाको सतर्क है, विघ्नके अधिनायक उसकी छायासे भी आतंकित होते हैं।' राजकुमारने अपनी वरदान-प्राप्ति तकका समाचार शिथिल स्वरमें ही सुना दिया।

'किंतु तुममें योग्य उल्लास क्यों नहीं है !' ऋषि आसनपर सावधान बैठ गये।

'आपका अन्तेवासी अज्ञानान्धकारमें भटकता रहे, वह उसीका अनधिकार !' राजकुमारके नेत्र भर आये—अन्यथा आपकी अहैतुकी कृपाके प्रसाद कहाँ परिसीम होते हैं।'

'वत्स !' कृमि-संवादकी बात सुनकर महर्षिका स्वर भी गद्गद हो गया। अन्ततः उनका छात्र त्रिवर्गकी लिप्सा-से ऊपर उठ गया। वह वैराग्यकी परम सम्पत्ति लेकर उनके समीप ज्ञानकी ज्योति प्राप्त करने आया है। 'भगवान् शंकरका आशीर्वाद अमोघ है। चक्रवर्ती साम्राज्य इन्द्रत्व अब तुम्हारे स्वत्व हैं। उनकी प्राप्तिका आग्रह जैसा अज्ञान-मूलक था, मोह था, वैसा ही आग्रह उनके त्यागका भी है। स्वप्नके सम्बन्धमें क्या आग्रह कि वह अमुक प्रकारका ही रहे अमुक प्रकारका न रहे।'

'भगवन् ! जागरण चाहिए मुझे।' राजकुमार श्वेतने महर्षिके पदोंमें मस्तक रखा।

'वह तुम्हारा स्वरूप है।' महर्षि कह रहे थे—'तुम

स्वप्न देख रहे हो, यही भ्रम है। तुम नित्य जाग्रत् हो। नित्य चिन्मय हो। तुममें स्वप्नकी सत्ता कहाँ है।'

श्वेतने दो क्षणमें सब समझ लिया। शास्त्र अवश्य कहते हैं कि क्षणार्धमें ज्ञानोपलब्धि होती है; किंतु होती है अधिकारीको। देवेन्द्र और विरोचन भी प्रजापतिके पास गये थे और उन्हें दीर्घकालतक व्रत धारण करना पड़ा था। श्वेतको गुरुगृहमें अधिक नहीं रहना पड़ा। किंतु उन्हें जब वे राजधानी पहुँचे—कोई हर्ष नहीं था उस स्वागत-सत्कारका जो उनका किया गया। जागरणका स्वरूप आदि वाणीमें आता होता—लेकिन वह अनिर्वचनीय है। कहा इतना ही जा सकता है कि जाग्रत्के लिये न कुछ लाभ रह जाता, न हानि।

देखे सकल देव

'भगवन् ! मैं किसकी आराधना करूँ !' वेदाध्ययन पूर्ण किया था उस तपस्वी कुमारने महर्षि भृगुकी सेवामें रहकर। महाआथर्वणका वह शिष्य स्वभावसे वीतराग, अत्यन्त तितिक्षु था। उसे गार्हस्थ्यके प्रति अपने चित्तमें कोई आकर्षक प्रतीत नहीं हुआ।

'वत्स ! तुम स्वयं देखकर निर्णय करो !' आजका युग नहीं था ! शिष्य गुरुदेवके समीप गया और उसके कानमें एक मन्त्र पढ़ दिया गया। वह अपने गुरुदेवके सम्प्रदायमें दीक्षित हो गया यह कौन सोचे कि 'उस जीवका भी कुछ अधिकार है। जन्म-जन्मान्तरसे चले आते उसमें भी किसी साधनाके कुछ संस्कार हो सकते हैं। उन संस्कारोंके अनुरूप दीक्षा ही उसके लिये उपयुक्त है।' यहाँ तो स्व-सम्प्रदाय—स्व-शिष्यश्रेणी अभिवर्धन ही एकमात्र अभिप्राय बन गया है आज !

महर्षि भृगु—वे ब्रह्मपुत्र समर्थ हैं, सर्वज्ञ हैं, और अपने अन्तेवासी कुमार आर्चेयपर स्नेह है उनका। वे सहज ही उसे इष्ट एवं मन्त्रका निर्देश कर सकते हैं; किंतु उन्हें प्रिय लगा कि उनका ब्रह्मचारी स्वानुभव-सम्पन्न बने।

बचपनमें मेरे कानमें अनेक बालकोंने 'हू' या 'ढू' किया है। अनेकोंके कानमें मैं चिल्लाया हूँ। वे सब न मेरे गुरु हैं और न शिष्य। कानमें कोई शब्दोच्चारण-मन्त्रोच्चारण कह लीजिये, दीक्षा है और इतनेसे ही कोई गुरु हो जाता है—मेरा चित्त इसे स्वीकार नहीं करता।

शास्त्रोंमें दीक्षा एवं गुरुका महत्त्व है, संतगुरु महिमा-का वर्णन करते शास्त्र थकते नहीं। वह सब मुझे अस्वीकार कहाँ है: मैं 'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु·······' से पीछे हटूँ तो आप मेरे कान पकड़े ; किंतु दीक्षा भी तो हो। कोई गुरु भी दृष्टिमें आवे। आप रेतमें धान और सरोवरमें बाजरेके बीज डालते चलेंगे और कहेंगे—'मैं कृषक!' कौन स्वीकार करेगा!

अपनी परम्परागत प्राप्त साधना जब अपने स्वयंके साधनसे सप्राण होती है, मन्त्रमें चेतना आती है। मन्त्र चैतन्य न हुआ तो मन्त्र ही नहीं। वह चेतन मन्त्र जब उपयुक्त क्षेत्र पहिचान कर दिया गया—यह देखकर दिया गया कि यह अपने जन्म-जन्मान्तरसे इसी पथका पथिक रहा है, तब दीक्षा हुई। दीक्षा हुई इसकी पहचान यह कि क्षेत्र उपयुक्त था, मन्त्रचेतन था। अतः स्वतः अप्रयास ही साधनाकी रुचि जाग गयी दीक्षामात्रसे। बीजमें अंकुर आ गया। अब आगे वह बढ़े, फूले, फले,—यह उस साधकका प्रयास ; किंतु यदि अंकुर ही नहीं आया तो दीक्षा हुई कहाँ? या तो बीज निष्प्राण था, अथवा क्षेत्र ही ठीक पहचाना नहीं गया।

महर्षि भृगु सिद्धगुरु—ब्रह्मपुत्रोंके लिये तो अमुक एक

ही सम्प्रदाय नहीं है। जैसा अधिकारी वैसी दीक्षा—सभी मन्त्र, सभी आराध्य उनके अपने हैं। उनके चित्तमें उद्‌भूत मन्त्र सदा सप्राण रहता है। वे किसीको यदि दीक्षा न देते हों, कारण तो होगा ही। आर्चेय उनका प्रिय शिष्य; किंतु वह महाआथर्वणका शिष्य है। उसकी प्रदीप्त प्रज्ञा—गुरु उसकी प्रज्ञाको ही प्राञ्जल करना चाहते हैं।

'भगवन्!' आर्चेयने अञ्जलि बाँधकर आज्ञा स्वीकार की। वह अप्रतिहत गति और महाआथर्वणका शिष्य जहाँ भी जायगा, उसका सत्कार करके जो लोकपाल अपनेको कृतार्थ न माने—कितने क्षण लोकपाल बना रह सकता है वह।

× × ×

'संयमिनी आज धन्य हुई!' धर्मराजने आगे आकर आर्चेयको प्रणिपात किया।

'जीवका भय आपके आश्रयसे निवृत्त हो सकता है!' अर्घ्य-पाद्यादि स्वीकार करके आर्चेयने यमराजकी पुरी देखी। उस ऋषिपुत्रके शुद्ध चित्तमें दोषदर्शनकी प्रवृत्ति कभी अंकुरित नहीं हुई। उसने प्रसन्नचित्तासे स्वीकार किया—'मृत्युकी विस्मृति ही जीवको प्रमत्त बनाती है और यह पापमें प्रवृत्त होता है। यदि वह यमका स्मरण करता रहे, उनके दारुण दण्डकी स्मृति उसे शुद्ध रक्खेगी। उसे नरकाग्निमें परिशुद्ध करना आवश्यक होगा।'

किंतु आर्चेयके लिये तो इतना पर्याप्त नहीं है। जिसके चित्तमें तमस्‌का प्रवेश ही नहीं, वह यमकी भला क्यों आराधना करेगा! वहाँसे प्रस्थान किया उसने कुबेर-जीकी अलकापुरीकी ओर।

'आपका आशीर्वाद जीवको प्रथम पुरुषार्थकी ओरसे निश्चिन्त कर देगा!' धनाधीशका सत्कार स्वीकार करके ब्रह्मचारी आर्चेय प्रस्थान करनेको उद्यत होकर बोले—'धर्म तथा काम अर्थके वशवर्ती हैं। अतः त्रिवर्गमें आपकी अनुकम्पाका आकांक्षी रहेगा ही।'

'आपकी अनुकम्पाका आकांक्षी यह जन!' जिसे त्रिवर्गकी वासना स्पर्श नहीं करती, राजाधिराज वैश्रवण उसके श्रीचरणोंकी रज मस्तकपर धारण करके कृतार्थ ही होते हैं। 'मेरे ही समान जलाधीश एवं देवराज भी त्रिवर्गके ही स्वामी हैं। श्रीचरणोंकी अर्चा करके वे भी अपना सौभाग्य मानेंगे।'

कुबेरजीने संकेतसे सूचित कर दिया कि वरुणाकी पुरी विभावरी तथा स्वर्ग जानेका श्रम आर्चेयको नहीं करना चाहिये। वरुण तथा इन्द्र उनके अर्चक बन सकते हैं, आराध्य नहीं हो सकते। वैसे भी अलका पहुँचकर आर्चेयको कैलास जाना ही था अब लोकपालोंके यहाँ जानेका संकल्प त्याग दिया उन्होंने।

'वत्स!' कैलास पहुँचकर आर्चेयने प्रणिपात किया उमा-महेश्वरको। तो जगदम्बाने आगे आकर उठा लिया उन्हें। महर्षि भृगु रुद्राग्रज हैं और उनकी शंकरजीसे दक्षको लेकर कभी पर्याप्त खटपट हो चुकी है, यह सब

स्मरण था आर्चेयको ; किंतु उसे लगा कि वह अपने पिताके ही आश्रममें आ गया है। भगवान् चन्द्रमौलिका सुप्रसन्न अभिनन्दन और जगज्जननीका वात्सल्य—नि:शब्द आर्चेयके नेत्रबिन्दुओंने ही स्तवनका स्थान पूर्ण किया।

'यह निर्वाणका धाम! आर्चेयको प्रत्यक्ष चिद्घन सदाशिवके श्रीचरणोंमें चतुर्थ पुरुषार्थ अपवर्ग आश्रयण करता दृष्टि पड़ा। 'अभय यहाँ पूर्णता प्राप्त करता है। जीवके जीवनकी परम सफलता इन गङ्गाधरके निर्गुण गुणमय पादपद्मोंकी उपलब्धि है।'

आर्चेय कई मुहूर्त आनन्दमग्न रहे। चित्त जैसे बाह्य-वृत्तियोंसे शून्य हो गया हो। वह सम्मुख विराजमान कर्पूरगौर मूर्ति—वह मूर्ति कहाँ है। वही तो विभु अनिर्वचनीय परमार्थ-तत्त्व है।

भगवान् शिवके गण आ गये। जैसे हैं वे गण, आप जानते हैं। अपनी सहज चञ्चलवृत्ति वे भूल जाते हैं अपने आराध्यके सम्मुख। आर्चेयकी भी उन्होंने वन्दना ही की।

'रागका ध्वंस हुए बिना वैराग्य पुष्ट नहीं होता।' आर्चेयको कोई दोष नहीं दीखा रुद्रगणोंमें—प्रलयं-करके ये सेवक नश्वरके प्रति रागका आधार ही तो नष्ट करते हैं। आसक्ति यदि निष्करुण उत्पीड़क न बने, उसके नागपाशसे प्राणी कैसे त्राण पायेगा?'

सब सानुकूल ; किंतु आर्चेयको उल्लसित—आनन्द अभीष्ट है और कैलास शान्तिका परमधाम है। अतएव

आज्ञा ली उन्होंने चरण-वन्दना करके प्रभु एवं जगदम्बासे।

'लोकपितामहके यहाँ नित्य व्यस्तता है।' अनेक बार आर्चेय ब्रह्मलोकमें उन स्रष्टाकी चरणवन्दना करने अपने गुरुदेवके साथ गये हैं। उनका चित्त वहाँकी प्रवृत्तिमें कभी प्रसन्न नहीं हुआ। अतः इस यात्रामें ब्रह्मलोककी बात वे नहीं सोचते।

× × ×

'यतः शान्तिः, यतोऽभयम्' महर्षि भृगुने किसी समय त्रिदेवोंकी परीक्षा करके अपना यह निर्णय ऋषिमण्डलीमें घोषित किया था। उसी परीक्षाका प्रसाद भगवान् नारायणके वक्षपर भृगुलताके रूपमें नित्य सुशोभित है। गुरुकी प्रतिभा ही नहीं, उसकी भावना भी शिष्यमें मूर्त होती है। शिष्य गुरुकी नाद-संतति भी तो है। अतः यदि आर्चेय अपने स्वयंके निर्णयसे भी वहाँ पहुँचे थे, जो उनके गुरुदेवका निर्णय है तो आश्चर्य करने-जैसी कोई बात नहीं है।

ब्रह्मन्! आपका स्वागत!' स्वयं शेषशायीने उठकर प्रथम प्रणाम किया था आर्चेयके पदोंमें। भगवती रमाने उनके चरण धोयें थे। आसन स्वीकार कर लिया था उन्होंने यन्त्रचालितके समान; किंतु उनका अन्तर— उनकी बाह्य संज्ञा डूब गयी थी, यह बात भी कहते बनती नहीं है। अनन्त आनन्दसिन्धु और वही घनीभूत

होकर यह सम्मुख सान्द्रनील ज्योतिर्मय बना अर्चातत्पर हो गया है। बाह्य और अन्तरका भेद मिट जाय—उस अवस्थाका वर्णन भी कोई कैसे कर सकता है।

'कोई आज्ञा देकर आप मुझे कृतार्थ करें।' वे पुरुषोत्तम पूछ रहे थे, जिनकी आज्ञाका अनुवर्तन करके ही जीवन कृतार्थ होता है। 'सेवाका सौभाग्य इस जनको अवश्य मिलना चाहिए।'

'ब्राह्मणकुमार हूँ, ब्रह्मचारी हू, अतः भिक्षा माँगनेका अधिकारी तो हूँ ही।' उन लीलामयकी ही प्रेरणा होगी कि वाणीने शब्दोच्चारणकी शक्ति प्राप्त कर ली— 'आपकी ये नित्य अभिन्न शक्तिदेवी महामाया, प्रथम इनके श्रीचरणमें ही प्रार्थना। ये इस शिशुपर सानुकूल रहें। इस अबलका मानस कभी व्यामोह में न पड़े, ऐसा अनुग्रह बनाये रखें।'

'एवमस्तु!' स्वरमें वात्सल्यकी माधुरी उमड़ उठी— 'ऋषिपुत्र और कुछ आज्ञा करेंगे?'

'इन श्रीचरणोंमें अविचल अनुराग।' स्वर गद्‌गद् हो गया। 'आपके गुणगणोंका चिन्तन ही इस जनके चित्तका व्यसन बना रहे।'

'आपकी जैसी इच्छा!' पुराण-पुरुष कह रहे थे— 'इसका तात्पर्य है कि हम दोनोंको आपकी सेवाका सुअवसर कुछ दिन भी नहीं मिलेगा।'

× × ×

'भगवन्!' शिष्यने यात्रा समाप्त करके गुरुदेवके चरणोंमें साष्टांग प्रणिपात किया।

'वत्स! आराध्यकी उपलब्धि हो गयी?' महर्षि भृगुके प्रश्नमें पृच्छा कम, प्रसन्नता अधिक थी।

'श्रीचरणोंका अनुग्रह!' शिष्य कह रहा था—'सब प्रमुख देवता देख लिये मैंने; किंतु अन्तरको परमाश्रय देने वाले तो एक ही हैं—वे आनन्दघन।'

रक्षकके लंबे हाथ

'आज रक्षक भक्षक बन गया है। हम किसी प्रकार मुझे सेनामें जानेसे रोक नहीं सकते।' मेरी माताने कहा था। उस माताने जिसने जीवनके अस्सी बसंत देख लिये हैं। जो पिछले बाईस वर्षका अपना वैधव्य जीवन एकमात्र अपने इस पुत्रके सहारे बिताती रही है। जिसकी भौंहोंके केशतक श्वेत हो चुके हैं। जिसके शरीरपर कालकी रेखायें झुर्रियोंके रूपमें सर्वत्र गिनी जा सकती हैं। जो इस बुढ़ापेमें भी घरके कामसे बचा समय अपने छोटे बगीचेमें पेड़ों-पौधोंको सींचने-गोड़ने तथा घास निकालनेमें बिता देती है। फलोंको कुतरनेवाली चिड़ियोंमें एवं गिलहरियोंमें भी जो बुरा-भला कहनेके बदले चुगनेको दोनों समय नियमसे दाने डालती है। जिसे किसीसे झगड़ते पूरे कस्बेमें किसीने कभी नहीं देखा। वह मेरी माँ रो रही थी। उसने मुझे विदा देते समय कहा था—'जहाँतक बन सके, अपने हाथ निरपराधोंके रक्तसे रँगनेसे बचना। परमात्मा तेरी रक्षा करेगा। बड़े लम्बे हैं उस रक्षा करनेवालेके हाथ।'

प्रत्येक युवकको सैनिक शिक्षा लेनी ही पड़ती है हमारे

देशमें और प्रत्येक सैनिक आयुका व्यक्ति इस युद्धके प्रारम्भमें ही सेनामें बुला लिया गया। मेरी माँको चाहे जितना दुःख हो—सहस्रों माताओंको ऐसा ही दुःख है; किंतु जर्मनीमें फ्युहरर (हिटलर) के आदेशको कोई असहाय वृद्धा कैसे टाल सकती थी।

मुझे सैनिक-प्रशिक्षण पहले ही प्राप्त हो चुका था। अब कुछ महीनोंमें मैं पनडुब्बीपर काम करनेके लिये शिक्षित किया गया; क्योंकि मैं बहुत कुछ जल-सेनाके सैनिककी शिक्षा भी प्राप्त कर चुका था। जर्मनीकी जल-सेना छोटी है। ब्रिटेन, फ्राँस, अमेरिकाकी संयुक्त जल-सेनाकी चर्चा तो दूर रही, अकेले ब्रिटेनकी जलशक्तिसे टक्कर लेनेकी बात भी सोची नहीं जा सकती, किंतु फ्युहररको अपनी पनडुब्बियोंपर भरोसा है। विपक्षीके जहाजोंको डुबाकर उसकी जलसेनाकी रीढ़ तोड़ दी जा सकेगी, यह कठिन भले हो, असम्भव नहीं लगता है और जर्मनीका शौर्य असम्भवको सम्भव बनानेसे ही कब हिचका है।

मेरा काम न यान-संचालन करना है और न तार-पीडोंसे प्रहार करना। मैं यन्त्रकक्षका निरीक्षक हूँ। कभी-कभी रेडियो-संवाद लेने और सुननेका भी काम करता रहा हूँ। वैसे आप सम्भवतः नहीं जानते कि पनडुब्बीके प्रत्येक व्यक्तिको उसके संचालन, तारपीडो-प्रहार तथा यन्त्रोंके समस्त प्रयोगोंकी शिक्षा लेनी पड़ती है। कब कैसी दुर्घटना होगी और किस व्यक्तिके लिये कौन-सा काम अनिवार्य बन जायगा, यह कहा नहीं जा सकता।

आप कह सकते हैं कि मैंने किसी जहाजपर अपने हाथसे 'तारपीडो' नहीं चलाया, अतः हत्याके रक्तसे मैं बचा हूँ किंतु मैं अपने-आपको धोखा कैसे दे सकता हूँ। मुझे ही सूचित करना पड़ता था अपने यन्त्रोंसे पता लगाकर कि विपक्षी जहाज कहाँ है, किस ओर जा रहा है। किस स्थानसे उसपर आघात करना ठीक रहेगा, यह निर्णय भले कप्तान करता हो; किंतु मेरा योग इस विनाशमें कम नहीं था। उन जहाजोंके सैनिक, मल्लाह तथा दूसरे लोग जिन्होंने हमारा कुछ नहीं बिगाड़ा, जिन्हें हम जानते तक नहीं। वे हमारे देशपर कभी आक्रमण करने न जायें, यह भी तो हो सकता था; किंतु वे विपक्षके जहाजपर हैं—जब वे सर्वथा असावधान होते, हमारी पनडुब्बीसे उनकी मृत्यु दौड़ पड़ती उनकी ओर।

हमारी पनडुब्बीमें पर्याप्त पैट्रोल था। एक महीने हम बराबर समुद्रमें रह सकें, इतना ईंधन, भोजनका सामान और आघातके प्रचुर अस्त्र। हमने अफ्रीकाके दुर्गम पश्चिमी तटके एक स्थानपर कुछ खाद्य-पदार्थ और पेट्रोल छिपा रक्खा था। संकटके समय वह हमारे काम आता। दो बार बीचमें हम वहाँ उतरे भी थे।

कुल सात व्यक्ति थे हमारी पनडुब्बीमें— सब युवक और साहसी। हमने ब्रिटेनके पाँच जहाज डुबाये, जिनमें तीन भारी सैनिक जहाज थे; किंतु इसका यह परिणाम हुआ कि ब्रिटेनके हवाई जहाज और विध्वंसकोंका पूरा दल हमारी खोजमें निकल पड़ा। वनमें जैसे किसी नरघाती चीतेको ढूंढ़ने शिकारी कुत्तोंका दल निकले—पश्चिम

अफ्रीका तथा ब्रिटेनसे पश्चिमका महासागर वे चप्पा-चप्पा करके ढूँढ़ने लगे। सम्भव है, उन्होंने अपने लिये अन्वेषणके क्षेत्र बाँट लिये हों।

'बचने और भागनेकी नीति कायरोंकी नीति है।' हमने केन्द्रको परिस्थिति की सूचना दी तो वहाँसे फटकार मिली—'आघात करो और शत्रुके अधिक-से-अधिक विध्वंसकोंको नष्ट कर दो! तुम्हारे दो सहयोगी और जा रहे हैं।'

हमारा कप्तान आवेशमें आ गया। केवल बारह घंटोंमें हमने विपक्षके तीन विध्वंसकोंको और जलसमाधि दे दी; किंतु इस उत्साहका दुष्परिणाम सम्मुख आ गया। हम घिर गये। ब्रिटिश पोतोंने इस प्रकार विस्फोटक फेंकने प्रारम्भ किये, जिससे मीलोंतक समुद्रका जल पूरी गहराई-तक ऐसे उबलने लगा, जैसे चूल्हेपर चढ़ा पतीलीका पानी।

भयंकर विस्फोटका शब्द! मैं मूर्छित हो गया और फिर मुझे कुछ पता नहीं है कि मेरे साथियोंका, मेरी पनडुब्बीका अथवा हमें घेरेमें लेकर मौतकी वर्षा करने वाले उन विपक्षके विध्वंसकोंका ही क्या हुआ। केवल अनुमान कर सकता हूँ कि पनडुब्बीके चिथड़े उड़ गये होंगे। मेरे साथी समुद्रके गर्भ में सो गये होंगे या समुद्री जन्तुओंने उन्हें पेटमें पहुँचा दिया होगा। जलके ऊपर तेलका प्रवाह जब तैर आया होगा, विपक्षी पोत अपनी सफलताका आनन्द मनाते लौट गये होंगे; किंतु मैं··· 'रक्षकके हाथ बहुत लंबे हैं' इसीलिये मैं यह सब लिखनेको बचा हुआ हूँ।

× × ×

जब मुझे चेतना प्राप्त हुई, तेज धूप थी। सूर्य आकाश-में सिरके ऊपर था। पीड़ासे मेरा पूरा शरीर फटा जा रहा था। शीघ्र ही वमन हुई। बहुत-सा खारा पानी निकला पेटसे। शरीर और सिरका दर्द कुछ कम हुआ। किंतु प्याससे कण्ठ सूखा जा रहा था। हिलनेकी शक्ति नहीं थी। मैं औंधेसे चित्त पड़ गया और पता नहीं कबतक पड़ा रहा। सम्भवतः मैं फिर मूर्छित हो गया था।

इस बार मुझे वर्षाकी बूँदोंने जगाया। बड़ी-बड़ी बूँदें बहुत तेज बर्षीं; किंतु कुल आधे घण्टेके पश्चात् फ़िर सूर्य निकल आया। कुछ पानी वर्षाका मैंने मुख खोलकर कण्ठतक पहुँचाया था। अब बैठकर मैंने कमीज खोल ली और उसे मुखमें निचोड़ने लगा।

थोड़ी शक्ति मिली जल पीकर। मैं चौंक गया; क्योंकि मैं जिस आधारपर पड़ा हूँ, वह स्थिर नहीं है। वह हिल रहा है और सम्भवतः चल भी रहा है। मैं उठकर खड़ा हो गया और देखने लगा कि मैं कहाँ हूँ।

चारों ओर अनन्त समुद्र है। सूर्य ढलने लगा है, अतः मैं केवल दिशाका अनुमान कर सकता हूँ; किन्तु मैं इस समय कहाँ हूँ—यह जाननेका कोई उपाय नहीं। यह मैंने देख लिया है कि जिस आधारपर मैं इस समय हूँ, वह एक तैरता हिमखण्ड है—उत्तरध्रुवसे समुद्रमें तैर आने-वाला एक हिमखण्ड। जलमें वह कितना डूबा है, पता नहीं किंतु ऊपर अब वह कुल दो-ढाई सौ गज लंबा है। इसका अर्थ है कि मैं उत्तरध्रुवसे चलनेवाली शीतल धारामें दक्षिण अफ्रीकाकी ओर इस हिमखण्डपर बहता जा रहा

हूँ। ऊपर एक भारी गिद्ध चक्कर लगा रहा है । वह मेरी मृत्युकी प्रतीक्षा करता होगा । यह समुद्री गीध अब दस-पन्द्रह दिन मजेसे प्रतीक्षा करता साथ चल सकता है ।

मृत्यु—मैं सिहर उठा । ज़ेबोंको टटोलनेपर पेन्सिल, डायरी और कुछ गोलियाँ मिल गयी हैं । ये आहारकी गोलियाँ हैं । इनसे पेट नहीं भरता, क्षुधाका कष्ट नहीं मिटता; किंतु शरीरको पोषण मिल जाता है । काम करनेकी क्षमता बनी रहती है । हमारे वैज्ञानिकोंने विपत्तिमे पड़े सैनिकोंके लिये इनका आविष्कार किया था ।

मैंने तीन गोली एक साथ खा ली हैं । शरीरमें अब स्फूर्तिका अनुभव करता हूँ । दर्द भी घटा है । किंतु यह तैरता हिमखण्ड—इन बहते हिमखण्डोंकी सूचना देनेवाला विभाग क्या इससे अनभिज्ञ है ? क्या इसके उपेक्षणीय आकारतक गल जानेके कारण अब उसने इसका पता रखना और इसके सम्बन्धमें जहाजोंको सूचना देना बंद कर दिया है ? क्या कोई जहाज मिलेगा मार्गमें ? यह भी तो सम्भव है कि इसके प्रवाहकी सूचना दी गयी हो और इधरसे कोई जहाज आये ही नहीं ।

अन्तिम सम्भावना ही अधिक है । इसका अर्थ जो कुछ है, जीवनके अन्तिम क्षणतक उसे लेकर आतंकित क्यों बनूँ । किंतु मैं यह सब क्यों लिखने बैठा हूँ ? क्या उपयोग इसका ? इस हिमखण्डपर बैठे-बैठे और कर भी क्या सकता हूं । समय काटनेका साधन भी तो कुछ चाहिये ।

रात्रिका अन्धकार फैलनेसे पूर्व एक दुर्घटना और हो गयी । मैं जिस हिमखण्डपर था, उसमें एक रेखा दीखी

मुझे बालके समान पतली। शीघ्र ही वह दरार बन गयी और हिमखण्ड दो टुकड़ोंमें विभक्त हो गया। मैं जिस टुकड़ेपर बैठा था, वह बहुत छोटा हो गया था। कूदकर मैं दूसरे टुकड़ेपर आ गया।

रात्रि कैसे व्यतीत हुई—पूछिये मत! सूर्यकी किरणों-को देरतक मेरा शरीर सेंकना पड़ा, तब कहीं मैं उठकर बैठने योग्य हुआ हूँ; किंतु यह सम्मुख क्या है? हे भगवान! हे दयाधाम! यह तो पृथ्वी है, ये वृक्ष दीख रहे हैं समुद्रतटके। मेरे प्रभु! तो तेरे लम्बे हाथ मुझे बचाने यहाँ तक बढ़ आये हैं। इतना समुद्र तो मैं अब सरलता से तैर सकता हूँ।

× × ×

वर्षों पीछे कांगोके समुद्रतटपर एक डायरी मिली। उसमें किसी जर्मन सैनिककी लिखी कुछ बातें हैं। अनुमान है कि पनडुब्बीके डूबनेपर उसका मूर्छित शरीर लहरोंपर बहता रहा और किसी बड़ी लहरने उसे उठाकर पानीमें तैरते हिमखण्डपर फेंक दिया। लेकिन पृथ्वीपर पहुँचकर उसका क्या हुआ, उसका कुछ पता नहीं है।

कांगोंके सुदूर उत्तरी गहन जंगलीय भागमें अत्यन्त बर्बर बौने लोग रहते हैं। कांगोंके सात फुट ऊँचे बालूवा जातिके शूर भी उन बौनोंके नामसे काँपते है। कोई साहस नहीं कर सका अभीतक उस अञ्चलमें जानेका। सुना जाता है कि कोई गौरवर्ण तरुण उन बौनोंके मध्य रहता

है। दूरसे दो-एक आखेटकोंने उसे देखा है। बौनोंके सम्पर्कमें आनेवाली जातिके मुखियाका कहना है—'वह बौनोंका देवता है। उसीके कारण बौने अत्यधिक निर्भय हो गये हैं और अब नरहत्या भी उन्होंने छोड़ दी है। वह देवता कहता है कि 'पूरे संसारका कोई स्वामी है और उसके रक्षा करनेवाले हाथ भले दीखते न हों, सब कहीं विपत्तिसे बचानेको बढ़ जाते हैं, किंतु प्राणियोंके मारनेवालेको वह रक्षक पसंद नहीं करता।'

पुनर्जन्म

डा० ह्यूम वॉन एरिच जीवाणु-वैज्ञानिक हैं मुख्य रूपसे। वैसे आज विज्ञानकी अनेक शाखाएँ परस्पर उलझ गयी हैं। रसायन-विज्ञान और परमाणु-विज्ञानके बिना आज जीवाणु-विज्ञानमें प्रगति नहीं की जा सकती। स्वभावतः डा० एरिचने इन विज्ञानकी शाखाओंमें भी अच्छा अध्ययन किया है। उनका प्रयोग चल रहा है और उन्हें लगता है कि मनुष्यमें आनुवंशिकता अङ्कित करनेवाली जो प्रकृतिकी लिपि है, उसमें परिवर्तन करनेकी कुंजी सैद्धान्तिक रूपमें उनके हाथ आ गयी है।

किंतु डा० एरिच अपनी शोधमें आगे बढ़ें, इससे पहले उनके सम्मुख एक नवीन समस्या आ खड़ी हुई है। उनका पाँच वर्षका पुत्र कल शामको सहसा एक विचित्र भाषा बोलने लगा। कठिनाईसे डा० एरिचको पता लगा कि वह शुद्ध संस्कृत बोल रहा है। यह भी पता इसलिये लगा कि डाक्टरका सहकारी किसी कामसे उनके पास घरपर आया था और वह संस्कृत जानता—समझता तो नहीं; किंतु इतना समझ सकता है कि यह संस्कृत-भाषा है।

डाक्टर एरिचके पूर्वपुरुष इटलीसे अमेरिका आये थे। उनकी पत्नी भी इटालियन हैं। जहाँतक डाक्टर-की जानकारी है, दम्पतिमेंसे किसीकी चार-छः पीढ़ियोंमें-से कोई संस्कृत जाननेवाला नहीं हुआ था। तब बच्चे-को यह संस्कृतका ज्ञान कहाँसे मिला? समस्या जटिल थी। डाक्टर इसके अतिरिक्त क्या कर सकते थे कि बच्चेकी बातका टेप रिकार्ड कर लें और उसका अनुवाद प्राप्त करनेका प्रयत्न करें।

बच्चा स्वयं अपनी बातका अनुवाद अपने पिताको बतला रहा था और जब संस्कृतमें बोली उसकी बातोंका टेप रिकार्ड अनुवादके लिये भेजा गया, तब अनुवाद होकर आनेपर इस बातकी पुष्टि हो गयी कि बच्चा अपना अनुवाद ठीक करता है।

'मैं एक भारतीय योगी हूँ। मेरा नाम ज्ञाननाथ है। काँगड़ा (भारत) से थोड़ी दूरपर मेरी कुटी है। एक बार दो अमेरिकन यात्री मिले थे मुझे। उनके संगसे अमेरिका देखनेकी इच्छा हुई। यह इच्छा बनी रही और शरीर टूट गया। मुझे यहाँके दो-चार बड़े नगर दिखा दो। फिर मैं भारत जाकर अपनी साधना पूरी करूँगा।' बच्चेकी सब बातोंका यही सारांश था।

बच्चेको वैज्ञानिकों—मनोवैज्ञानिकों तथा शरीर-विशेषज्ञों की देखरेखमें रक्खा गया। संस्कृतके ज्ञाताओंने उससे पूछताछ की। बच्चा कांगड़ाके आसपासके स्थानों, निवासियों, रीति-रस्मोंका ठीक-ठीक वर्णन करता था। वह कहता था कि उसने काशीमें संस्कृत पढ़ी है। उसके

पिताके घर कोई नहीं है। नाथमार्गके किसी योगीसे उसने दीक्षा ली थी। सबसे विचित्र बात यह कि वह अब बड़े सबेरे—अँधेरा रहते ही स्नान करना चाहता था। स्नान करके भारतीय योगियोंके समान नीचे फर्शपर बैठकर आँखें बंद करके पता नहीं क्या करता रहता था। देरतक और कभी-कभी जोरसे चिल्लाकर बोलता था—'अलख !'

× × ×

माता-पिताके द्वारा जब प्रथम दिन बालक गर्भमें आता है; केवल एक कलल होता है माताके उदरमें। उसमें सोलह कोशिकाएँ पितासे और सोलह मातासे आयी होती हैं। इन कोशिकाओंके केन्द्रक (न्यूक्लियस) होते हैं।

इन केन्द्रकोंके घेरेमें होते हैं **गुणसूत्र** (क्रोमोसोम) और इन गुणसूत्रोंमें स्थान-स्थानपर गाँठें होती हैं। इन गाँठोंको संस्कारकोष (जीन) कहते हैं। इन संस्कारकोषों-की संख्या एक कोशिकामें अरबोंमें है। वस्तुतः ये कोष एक ऐंठी सीढ़ीके आकारमें हैं और कुण्डली मारकर गाँठ-जैसे बन गये हैं। इनको फैला दिया जाय तो यह सीढ़ी मनुष्यके पूरे शरीरकी लम्बाईके दो तिहाईसे अधिक होती है।

एक संस्कारकोषमें प्रकृतिके एक अरब अक्षरोंमें यह लिखा होता है कि गर्भस्थ शिशुकी आकृति, रंग, कद

आदि कैसा होगा ? प्रकृतिके इन अक्षरोंका वैज्ञानिक एमोनों एसिड कहते हैं जो विभिन्न क्रमसे लगे होते हैं। डाक्टर एरिच दीर्घकालसे परमाणु-विकिरण तथा विषाणु-के द्वारा इन नैसर्गिक अक्षरोंके क्रममें परिवर्तनकी चेष्टामें लगे हैं। एक सीमातक वे सफल हो गये हैं।

'एक कललमें स्थित सभी गुणसूत्रोंके संस्कारकोषोंमें समान लिपि नहीं है।' डाक्टर एरिचने यह नवीन खोज की है। 'लगता है—शरीरके विभिन्न अङ्गोंकी बनावटके आदेश विभिन्न संस्कार-कोषोंमें हैं।'

'इन संस्कार-कोषोके अनेक आदेश कई-कई पीढ़ियो-तक अक्रिय पड़े रहते हैं और कभी किसी समय सक्रिय हो सकते हैं।' ऐसा क्यों होता है ? अभी इसका कोई उत्तर विज्ञानके पास नहीं है।

किंतु यह सब तो माता-पिताद्वारा प्राप्त आनुवंशिकता-की बात है। वैज्ञानिक इसे समझते हैं और इस आनु-वंशिकताको आज नहीं तो, कुछ वर्षों बाद इच्छानुसार परिवर्तित कर लेनेकी उन्हें आशा है। यद्यपि लक्ष्य दूर है और अनेक उलझन-भरे प्रश्न सुलझानेको अभी अछूते पड़े हैं।

यह बच्चेका संस्कृत बोलना क्या है ? यह उसका पुनर्जन्म ? डाक्टर एरिचकी समझमें यह बात एकदम नहीं आ रही है। साथ ही इसे आनुवंशिकता कह देनेका भी कोई कारण नहीं दीखता।

वैज्ञानिक हठधर्मी नहीं होता। वह सत्यका शोधक होता है। डाक्टर एरिचको लगा कि उनके बच्चोंके

सम्बन्धमें शोध करनेके लिये भौतिकविज्ञानके वर्तमान साधन पर्याप्त नहीं हैं। परलोकवादियोंकी सहायता उन्हें उपेक्षित है।

× × ×

'पुनर्जन्म कैसे होता है ?' एक परलोक-विद्याके अमेरिकन ज्ञाताने बच्चेसे पूछा।

'इनमेंसे किसी टुकड़ेको पकड़ो।' बच्चोने अपना प्लास्टिकके खिलौनेका वह बक्स उलट दिया, जिसके टुकड़ोंसे वह अक्षर बताया करता था।

'इस टुकड़ेसे जो टुकड़े जुड़ सकें, उनसे एक अक्षर बनाता है।' झटपट बच्चोने एक अक्षर बनानेवाले टुकड़े जोड़ दिये और बोला—'अब ऐसे ढंगसे इससे मिलाते अक्षर जोड़ते जाता है कि कम-से-कम अक्षर बनाकर हम 'म' तक पहुँच सकें।'

'तुम खेलमें लग गये। मेरे प्रश्नका उत्तर तुमने दिया नहीं।' प्रश्नकर्ताने बच्चोको टोका।

'मैं आपको उत्तर ही दे रहा हूँ। मैं एक भारतीय साधु हूं। साधु खिलौनोंसे खेला नहीं करते।' बच्चा तनिक अप्रसन्न हुआ—'तुम क्या कुछ समझते नहीं हो ?'

'हम सचमुच कुछ नहीं समझ सके।' नम्रतापूर्वक प्रश्नकर्ताने स्वीकार किया।

'मनुष्य मरते समय जो कामना करता है, वह उस टुकड़ेके समान है, जिसे तुमने पहले उठाया था। मनुष्यके

पास उसके वर्तमान जीवन और पहलेके अनेक जन्मोंके लाख-लाख संस्कार होते हैं। यहाँ तो ये थोड़ेसे टुकड़े हैं।' बच्चेने उन टुकड़ोंको एक बार हाथसे उलट-पलट दिया।

'मरनेके समयकी अन्तिम कामनासे मेल करनेवाले संस्कार भी अनेक प्रकारके प्रारब्ध बना सकते हैं; किंतु ध्यान यह रखना पड़ता है कि ऐसा प्रारब्ध बने, जिससे मेल खाते दूसरे प्रारब्ध बनते चले जायँ और 'म' तक पहुँचनेके लिये प्रारब्धोंकी छोटी-से-छोटी जंजीर बने।' बच्चेने इस भावसे देखा, जैसे वह अपनी पूरी बात समझ चुका है।

'म' तक पहुँनेकी बात ही क्यो ?' प्रश्नकर्ताने पूछा।

'मनुष्यका प्रारब्ध ही अन्तिम प्रारब्ध होता है। केवल मनुष्यके मरनेपर प्रारब्ध शृङ्खला बनती है और मनुष्य-जन्मका प्रारब्ध बनाकर वह पूरी हो जाती है।' बच्चेने बताया—'दूसरे प्राणी तो उस शृङ्खलाके बीचके प्रारब्धों-से उत्पन्न होते हैं। मनुष्य ही साधन करके मुक्त हो सकता है।'

'यदि आप अपने साधनको इस जीवनमें भी पूर्ण न कर सके।' प्रश्नकर्त्ता बच्चेको आदरपूर्वक ही सम्बोधित कर रहा था; क्योंकि वह जानता था कि उपेक्षा प्रकट होनेपर बच्चा असंतुष्ट हो जायेगा।

'मैं इस बार अवश्य पूर्णत्व प्राप्त करूंगा।' बच्चा तनिक उत्तेजित हुआ और तुरंत शान्त भी हो गया। 'मान लो तुम्हारी ही बात ठीक निकले, ऐसा सम्भव नहीं

है। तब भी कुछ हानि नहीं है। मैं सावधान रहूँगा कि जीवनमें साधनके विरोधी भाव न आवें। कुछ प्रमादवश आ गये तो वे अगले प्रारब्ध बनते समय संचितमें चले जायँगे और मैं फिरसे साधनमें आगे बढ़ूँगा। साधकका पतन नहीं होता। वह जितना चल चुका, अब उससे आगे ही उसे चलना रहता है।'

'संचित क्या ?' प्रश्नकर्ताकी समझमें यह बात आयी नहीं थी।

'ये टुकड़े जिनका हमने उपयोग नहीं किया, संचितके समान हैं।' बच्चेने बताया—'जिन कर्म-संस्कारोंका उपयोग प्रारब्ध-शृङ्खलाके निर्माणमें नहीं हुआ, उनकी राशिका नाम संचित है।'

'उनका उपयोग कब होगा ?'

'अगली बार प्रारब्ध बनते समय। यदि मनुष्य जीवनमें मुक्त न हो जाय।' बच्चेने कहा—'मुक्त पुरुष-का संचित भस्म हो जाता है और यह याद रक्खो कि साधनके संस्कार संचितमें कभी फेंके नहीं जाते। वे सदा प्रारब्ध बनानेके लिये चुने जाते हैं।'

'यह सब व्यवस्था कौन करता है ?'

प्रश्नकर्ता देरसे यह बात पूछनेको उत्सुक थे। 'ईश्वर ही यह सम्पूर्ण व्यवस्था करता है ?'

'ईश्वर करता है, ऐसा कह सकते हैं।' बच्चा बहुत गम्भीर हो गया। वस्तुतः यह व्यवस्था ईश्वरका विधान करता है। हम उस कर्मविधानके नियन्ताको यमराज कहते हैं। मैं नहीं जानता कि दूसरे लोग उसे क्या कहते

हैं। वैसे यमराजके सम्बन्धमें मुझे कुछ अधिक पता नहीं है।'

'मृत्युके पश्चात् और जन्मसे पूर्व आपकी जो अवस्था थी, उसके सम्बन्धमें आप कुछ बतायेंगे !' प्रश्नकर्ताने अपना अन्तिम प्रश्न किया।

'परमात्मा नहीं चाहता कि यह रहस्य जीवोंपर प्रकट हो।' बच्चेने कोई उत्सुकता व्यक्त नहीं की। बड़ी कठिनाईसे अनेक बार पूछनेपर उसने कहा—'आपको इससे कोई लाभ नहीं होगा। देहत्यागके पश्चात् जीव केवल जीव नहीं होता। कारण-शरीर और सूक्ष्म-शरीर अर्थात् मन और बुद्धि तो उसके यहाँके होते हैं। एक आतिवाहिक शरीर भी उसे मिल जाता है, जिसकी आकृति प्रायः उसके भौतिक स्थूल-शरीर-जैसी होती है। वह भावलोक है, जहाँ उस आतिवाहिक देहमें जाना पड़ता है। अतएव जिसकी जैसी भावना जीवनमें होती है, उस प्रकार ही उसे वह भावलोक दीखता है।'

बच्चा थक चुका था। उस दिनका प्रश्न-कार्य रोक देना पड़ा।

× × ×

'मुझे अमेरिका देखना है। पहले मुझे यहाँके मुख्य-मुख्य स्थान दिखला दो।' बच्चेने हठ पकड़ लिया। वह किसीके प्रश्नोंका उत्तर देता नहीं था। डाक्टर एरिचको उसका हठ रखना पड़ा। अपनी प्रयोगशाला सहकारीको

सौंपकर पत्नी और पुत्रके साथ वे यात्राके लिये निकले।

डाक्टर एरिचका पुत्र सामान्य बालकोंसे नितान्त भिन्न था। वह केवल फल-मेवे खाता और दूध पीता था। अनेक बार संस्कृत बोलने लगता था। किसी भी दृश्यके प्रति उसने कोई विशेष आकर्षण प्रकट नहीं किया।

यात्रा अधिक दिन चली भी नहीं। बच्चा बार-बार हठ कर रहा था कि उसको भारत भेजनेकी व्यवस्था कर दी जाय। वह अपनी मातासे अनेक बार पूछ चुका था कि भारत जानेका मार्ग क्या है और वहाँ जानेके लिये क्या करना पड़ता है?

डा० एरिच देशसे बाहर जानेको प्रस्तुत नहीं थे। उनकी प्रलोगशालाका काम अधूरा पड़ा था। बच्चेको अकेले भेजनेकी बात सोची नहीं जा सकती थी। पत्नीने अवश्य प्रस्ताव किया था कि यदि डाक्टर छः महीने बाद भारत आनेका वचन दें तो वह पुत्रको लेकर जा सकती है और वहाँ पतिकी प्रतीक्षा करेगी।

यह सब कुछ करना नहीं पड़ा। अभी पासपोर्टके लिए निवेदन भेजा ही गया था कि बच्चा एक दिन सवेरे स्नान करके आसन लगाकर बैठा और कुछ क्षण पीछे 'अलख' की उच्चध्वनिके साथ उसने देह त्याग दिया। सम्भवतः उसका देह अमेरिका-दर्शनकी कामनाका हीं परिणाम था। कामना पूर्ण होते ही देह पूरा हो गया।

प्रार्थनाका प्रभाव

'भगवान् याकशायरमें हैं और दक्षिण ध्रुवमें नहीं हैं ?' वह खुलकर हँस पड़ा। 'जो यहां हमारी रक्षा करता है वह सब कहीं कर सकता है।'

इस तर्कका किसीके पास भला क्या उत्तर हो सकता है। श्रीमती विल्सन जानती हैं कि उनके पति जब कोई निश्चय कर लेते हैं, उन्हें रोका नहीं जा सकता।

मनुष्य भगवान्की सृष्टिका बड़ा अद्भुत प्राणी है। इस दो पैरसे चलने वाले पुतलेके भीतर क्या-क्या है—कदाचित् इसके निर्माता ब्रह्माजी भी नहीं जानते। यह देवता बन सकता है, दानव बन सकता है, पशु बन सकता है और पिशाच तक बन सकता है। जब इसे कोई सनक सवार हो जाती है तो देवता और दानव दोनों चकित रह जाते हैं। जो कार्य दोनोंके वशका न हो—मनुष्यके लिये दुर्गम, असम्भव जैसे कुछ नहीं है। वह नर जो है। उसका नित्य सखा नारायण उसका साथ देगा ही—यह दूसरी बात है कि नर ही अपने सखाकी उपेक्षा किये निर्बल बना रहे।

मि० विल्सन पक्के निरामिषभोजी हैं। उनके लिये उबाले आलू, उबाली पत्तियां, थोड़ा अंजीर या कोई

सूखा मेवा और दूध—बस, यह सदा पर्याप्त होता है। चावल, दाल, रोटी—अन्न छोड़कर फलाहारी वे कभी बने नहीं, बननेकी बात भी नहीं सोची; किंतु अन्नकी अपेक्षा उन्हें कभी नहीं रहती। यदा-कदा हीं वे उसका उपयोग करते हैं।

लंबा दुबला शरीर, नीली आँखें, सुनहले केश—लेकिन इस फलाहारीप्राय अंग्रेजकी रुचि बड़ी विचित्र है। इसे गुमसुम बैठना पसन्द नहीं। आतङ्कपूर्ण स्थितियोंमें इसे आनन्द आता है। भयको आमन्त्रण देगा और जब चारों ओरसे प्राणघातक आशङ्काएँ इसे घेर लेंगी—बड़े आनन्दसे उछलेगा, कूदेगा और ताली बजा-बजाकर हँसेगा—'भगवान्! मेरे भगवान्! मैं तुझे देख रहा हूँ।' जैसे भगवान इसे शान्त, सौम्य परिस्थितियोंमें दीखते ही नहीं।

श्रीमती विलसन—बेचारी सुशील नारी—पतिकी मंगलकामनाके अतिरिक्त वह और क्या सकती है। बड़ा सनकी है उसका पति—जब हिमपात प्रारम्भ होगा, वह प्रायः संध्याका अन्धकार फैलनेके बाद अकेला मोटर लेकर घूमने निकल जायगा। नगरकी पुलिस तंग है, इस फक्कड़से। रात्रिके हिममें किसी राजपथपर कोई मोटर रुक गयी है, प्रातः मार्ग स्वच्छ करनेवाला दल दूरसे ही कहेगा—'बहुत करके विलसन होना चाहिये।' उसकी मोटर प्रायः पथपर बर्फमें जमी मिलती है। आप उस समय जब बरफ हटाकर मोटरकी खिड़कियाँ खुलनेयोग्य कर दी जायँगी, बड़े आनन्दसे खिड़की खोलकर कहेंगे—

'अच्छा, इतनी बरफ पड़ी ? तभी तो रातमें थोड़ी सर्दी लग रही थी। रातभर मोटरके भीतर अकड़े पड़े रहनेपर भी जो थोड़ी सर्दी लगनेकी बात करे—पागल नहीं तो और क्या कहा जाय उसे।

एक उपद्रव हो तो गिनाया जाय। जब तूफानके वेगसे समुद्र हाहाकार करने लगेगा, बड़े-बड़े जहाज लंगर डालकर बंदरगाहोंमें शरण लेंगे, खतरेकी सूचना बंदरगाह-का अधिकारी यन्त्रोंसे दूर-दूर भेजता होगा, एक छोटी सफेद रंगकी नौका गर्जन-तर्जन करते महासागरके वक्षपर हंसिनी-सी तैरती दीख सकती है। बड़े साहसी नाविक तक नेत्रोंसे दूरवीक्षण लगाये चकित-स्तम्भित देखते-रहते हैं—'मि० विलसन नौका-विहारका आनन्द लेने निकले हैं।'

यह सब तो नित्यकी बातें हैं; किंतु इस बार श्रीमती विलसन हताश हो गयी हैं। उनके पतिको एक नयी धुन चढ़ी है। दक्षिण अमेरिकासे कोई दल दक्षिण ध्रुवका पता लगाने जा रहा है। विलसन उस दलके साथ जायंगे। कैसे जायँगे ? कैसे रहेंगे ? ये प्रश्न कभी विलसनके मनमें उठे हों तो आज उठें। उन्होंने तो लिखा-पढ़ी की उस दलके नायकसे और अनुमति प्राप्त कर ली। पासपोर्ट ले लिया और जहाजमें स्थानतक निश्चित करा लिया। यह सब करके तब पत्नीको सूचना दी इस भले आदमीने।

'मैं आपको अपने महान् निश्चयसे विचलित नहीं करूँगी।' श्रीमती विलसनको कोई आश्चर्य नहीं हुआ। अपने पतिके स्वभावको वे जानती हैं। 'मुझे इसका गर्व

है कि मेरे पति विश्वके उन थोड़ेसे लोगोंमें एक हैं जो अकल्पनीय साहस कर सकते हैं।'

'कितनी अच्छी हो तुम !' विल्सन तो बच्चोंकी भाँति हैं। वे बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं।

'तुम मेरी एक बात मान लो! भोजन-सम्बन्धी अपना नियम अब यहीं रहने दो।' श्रीमती विल्सनका अनुरोध सहज स्वाभाविक है। किसी हिमप्रदेशमें कोई शाकाहारी बने रहनेका हठ करे, बोतलको न छूनेकी शपथका निर्वाह करे—कैसे जीवित रहेगा वह।

'तुम क्यों चिन्ता करती हो?' यही उत्तर ऐसे किसी भी अवसरपर देता है। 'चिन्ता करनेवाला है न। वह सारे संसारकी चिन्ता करता है। तुम विश्वास रक्खो—जबतक मैं होशमें रहूँगा, उसकी नित्य प्रार्थना करूँगा। उसे भूलूँगा नहीं।'

'उसे भूलूँगा नहीं।' इससे बड़ा आश्वासन भला और क्या दिया जा सकता है।

× × ×

(२)

'मैं शाकाहारी हूँ। किसी प्रकारकी कोई शराब न छूनेकी मैंने प्रतिज्ञा की है।' दक्षिण अमेरिकासे जहाज छूटनेके पश्चात् पहले ही दिन विल्सनको दलनायकको स्पष्ट सूचित करना पड़ा। स्थलपर इसकी आवश्यकता नहीं पड़ी थी। उनकी पत्नी उनके साथ आयी थीं इंग्लैण्डसे

और जहाजके छूटनेके समयतक विदा देने उनके साथ रहीं। दलके सदस्योंने भूमिपर रहते समय एक साथ भोजन करनेका कभी कोई आग्रह किया नहीं था।

'आप निरामिषभोजी हैं और शराब छूतेतक नहीं?' दलनायक हर्बर्ट अपनी कुर्सीसे उठ खड़े हुए। आप होशमें भी हैं या नहीं? दक्षिण ध्रुवकी यात्रा करने चल रहे हैं आप।'

'मेरे बेहोश होनेकी तो कोई बात नहीं है।' विल्सन शान्त बैठे रहे—'मैं जानता हूँ कि मैं कहाँ जा रहा हूँ।'

'हम आपको समीपके द्वीपपर छोड़ देंगे। अमेरिका लौट जानेके लिये एक सप्ताहके भीतर ही आप जहाज पा सकते हैं।' दलनायकको खेद हो रहा था—क्यों वह इस व्यक्तिको साथ ले आया।

'यात्रामें साथ ले चलनेकी स्वीकृति आपने दी है और वह पत्र मेरी जेबमें है।' विल्सनने दृढ़ स्वरमें कहा—'मैंने यात्राके नियमोंमें किसीको तोड़ा नहीं है।'

'आप चाहेंगे तो लौटनेपर आपको इंग्लैंडसे यहाँ बुलानेका हर्जाना और मार्गव्यय मैं चुका दूँगा।' हर्बर्टने भी दृढ़ स्वरमें ही कहा—'जान-बूझकर किसीकी हत्या करनेके लिये मैं उसे साथ नही ले जा सकता।'

'मैं लौटनेके लिये नहीं आया हूँ।' विल्सन ज्यों-के-त्यों दृढ़ रहे। 'सब सदस्य अपने उत्तरदायित्वपर आये हैं। किसीकी मृत्युके लिये कोई उत्तरदायी नहीं है।'

'तुम समझनेका प्रयत्न करो मेरे मित्र।' हर्बर्ट बैठ गया और विल्सनका हाथ पकड़कर बड़ी नम्रतासे उसने

कहा—'जहाँ बहुत तेज शराब भी गलेके नीचे जाकर रक्तमें उष्णता बनाये रखनेमें किसी भाँति सफल होती है, वहाँ कोई शराब न छूनेका व्रत रक्खे—कैसे जीवित रहेगा ? हमारा जहाज बहुत दूरतक नहीं जा सकता। अन्तमें हमें स्लेजपर ही यात्रा करनी है। हमारे एकमात्र भोजन वहाँ साथ चलनेवाले बारहसिंगे ही हो सकते हैं। कोई भी भोजनका पदार्थ वहाँ प्राप्य नहीं और न उसे ले जानेके साधन हैं।'

'मैं आपकी सहानुभूति एवं सलाहका कृतज्ञ हूँ।' विल्सनने भी स्वरको पर्याप्त प्रेमपूर्ण बना लिया—'ये सब कठिनाइयाँ मेरे ध्यानसे बाहर नहीं हैं। लेकिन तुम क्या नहीं मानते कि भगवान् सर्वसमर्थ हैं ? वे सर्वत्र हैं तो हमें क्यों भय करना चाहिए और क्यों चिन्ता करनी चाहिये ? मैं तो इस यात्रापर आया ही इसलिये हूँ कि निर्जन हिमप्रदेशमें भी परमात्मा है और वहाँ भी वह उस प्रार्थनाको सुननेके लिए उपस्थित रहता है जो केवल उसके लिये की जाती है—यह अनुभव करूँ।'

'मैं नास्तिक नहीं हूँ। लेकिन इतना आशावादी बननेका भय भी नहीं उठा सकता।' हर्बर्ट ठीक कह रहा था। एक सामान्य मनुष्य जैसे सोच सकता है, वैसे ही सोच रहा था वह—'मैं कृतज्ञ रहूँगा, यदि तुम मेरी सलाह मान लो।'

'हम पहले प्रार्थना करेंगे।' विल्सनने दूसरा ही प्रस्ताव किया—'प्रार्थनाके बाद भोजन करके तब इस बात पर चर्चा करना अच्छा रहेगा।'

'परमात्मा ! मेरे परमात्मा ! तू सब कहीं है। तू उस हिम-प्रदेशमें भी है जहाँ मैं तुझे प्रणाम करने आ रहा हूं।' विल्सनका कण्ठ प्रार्थना करते समय गद्गद् हो रहा था। उसके बन्द नेत्रोंसे आँसूकी बूंदें टपक रही थीं—जगदीश्वर! एकमात्र ही सबका रक्षक और पालक है। तू यहां है और सब कहीं है। हम क्यों डरें ? क्यों चिन्ता करें। तू है न ! हमें शक्ति दे कि हम तेरा ही भरोसा करें ! तुझे ही स्मरण करें !'

सभी यात्री, सेवक और वे नाविक भी जो प्रार्थनामें आ सकते थे—आये थे सबके नेत्र गीले हो गये थे, सब यात्रियोंको लग रहा था विल्सन इस भयंकर यात्रामें उनके लिये बहुत आवश्यक है। उसका विश्वास—उसकी प्रार्थना उन्हें जो आत्म-बल दे रही है, वह उस समस्त सामग्रीसे, जो आवश्यक मानकर साथ ली गयी है, अधिक महत्त्वपूर्ण है।

सबकी सहानुभूति विल्सनके साथ हो गई थी। दल-नायक हर्बर्टने लौटनेकी बात फिर नहीं छेड़ी ! उसने सोच लिया—'परिस्थिति जब विवश करेगी, आहार-सम्बन्धी नियम अपने-आप लुप्त हो जायँगे। अभी आग्रह करनेका अर्थ उस आग्रहको पुष्ट करना ही होगा।'

× × ×

(३)

'विल्सन ! हम प्रार्थना करेंगे।' दलनायक हर्बर्ट और दलके दूसरे साथी प्रार्थनाके अद्भुत प्रभावको देखते-

देखते अब अभ्यस्त हो गये हैं। वे अब विल्सनको परिहास-में संत विल्सन कह लेते हैं; किंतु यह केवल परिहास नहीं है। प्रायः सभी अनुभव करते हैं कि विल्सन संत हैं। अब जहाज छोड़कर दल स्लेजगाड़ियोंपर यात्रा कर रहा है। बर्फीले तूफान, बर्फकी दल-दल, मार्गमें पड़ी पचीस पचास गज चौड़ीतक दरारें और मार्ग खो जाना—सच बात तो यह है कि कोई मार्ग है ही नहीं। दिग्दर्शक यन्त्र और अनुमान—पद पद-पर विपत्तियाँ आती हैं। किसी भी दारुण विपत्तिके समय दल एकत्र हो जाता है और प्रार्थना होने लगती है। है अद्भुत बात—प्रत्येक बार प्रार्थनाके पश्चात् सभी अनुभव करते हैं कि विपत्ति भाग गयी—भगा दी गयी है और उनका मार्ग सुगम हो गया है।

हिम—अनन्त अपार हिम है चारों ओर। वृक्ष, तृण, हरियालीकी तो चर्चा ही व्यर्थ है। बारहसिंगोंके झुंड और कुत्तोंका दल—कुत्ते न हों तो स्लेज खींचे कौन! लेकिन ये हिम-प्रान्तीय भयानक कुत्ते—बार-बार बिगड़ उठते हैं। बार-बार बारहसिंगोंके झुंडपर आक्रमण करते हैं और बारहसिंगोंमें भगदड़ मचती है। कुत्ते मनुष्यके समान बुद्धिमान् तो नहीं कि सोच-समझकर क्षुधापर नियन्त्रण रक्खें। बेचारे स्लेज खींचते-खींचते थके जाते हैं भूख लगती है और बारहसिंगोंको छोड़कर उन्हें मिल भी क्या सकता है। बड़ा कठिन है उनको नियन्त्रित करना।। समय-समयपर बर्फके नीचे जमी काई चरनेके लिए बारहसिंगोंको भी छोड़ना ही पड़ता है।

विश्राम—नाममात्र है विश्रामका। ऐसी दारुण यात्रा-में विश्राम कैसा! साथमें एक तम्बू है—नीचे हिमकी चट्टान और ऊपर अनवरत धुनी रूई-जैसी गिरती उज्जवल हिम—अपने-अपने थैलोंमें जूते पहिने ही घुसकर कुछ घटे पड़े रहनेको आप विश्राम कहना चाहें तो कह सकते हैं।

विल्सन—सबका सहारा, सबको उत्साहित रखनेवाला नित्य प्रसन्न विल्सन, और पूरे दलमें विल्सन ही हैं जिनका दलपर कोई भार नहीं। साथ कुछ मेवे, कुछ पनीर और जमे दूधके डब्बे, कुछ फल बंद डब्बोंमें आया था। वह सब विल्सनके लिये पहले सुरक्षित हो गया। लेकिन उसका क्या अर्थ है? दूसरेके लिये तो केवल वह स्वाद बदलनेका साधनमात्र हो सकता था। जब दूसरे शराबकी बोतल मुखसे लगाते हैं, विल्सन स्पिरिटके बरफको पिघलाकर उबालता है और गरम पानीकी घूँटें पीकर सबसे अधिक स्फूर्ति पा जाता है।

'मैं चरने जाता हूँ।' प्रायः वह सबको हँसा देता है। अद्भुत है यह अंग्रेज। उसके अमेरिकन साथी इस बातकी कल्पना ही नहीं कर सकते कि बारहसिंगोंके साथ बरफके नीचे जमी यत्र-तत्र काई जैसी घासको मनुष्य भोजन बना सकता है। लेकिन विल्सन मजेमें पर्याप्त मात्रामें उसे खा लेता है।

'हमें लौटना चाहिये!' सहसा एक दिन कुत्तोंनें स्लेजको लौटनेकी हठ ठान ली। वे किसी प्रकार आगे बढ़ना ही नहीं चाहते थे। बारहसिंगोंका झुण्ड चरनेको

छोड़ा गया और अदृश्य हो गया। विल्सनने सलाह दी—'लक्षण अच्छे नहीं हैं। इस वर्ष शीत शीघ्र प्रारम्भ होता दीखता है। भयंकर बर्फीले तूफान कुछ दिनोंमें ही चलने लगेंगे। हमलोग जहाजतक लौट चलें तो ठीक।'

'बारहसिंगे भाग चुके और उनको पानेका कोई मार्ग नहीं है।' दलनायक हर्बर्टने सहमति व्यक्तकी—'अब लौटनेपर हम सब विवश हैं। जहाज यदि समुद्रके जम जानेसे पहले न निकल सका तो हिमसमाधि निश्चित समझनी चाहिये।'

'हम फिर अगले वर्ष आ सकते हैं।' एक यात्रीने कहा। सभी श्रान्त थे और लौटनेको उत्सुक थे।

'हम फिर आ सकें या न आ सकें, हमारी यात्रा दूसरोंका मार्ग-दर्शन करेगी।' विल्सनने तटस्थ भावसे कहा! 'प्रयत्न करना हमारे हाथमें था। परमात्माकी इच्छा सर्वोपरि है और हमें उसके संकेतोंकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।'

कुत्ते लौटते समय गाड़ियोंको पूरी शक्तिसे खींच रहे थे। जैसे उन्हें भी लगता था कि इस हिमप्रदेशसे जितनी शीघ्र निकला जा सके—उतनी शीघ्र निकल चलनेमें ही कुशल है।

× × ×

(४)

'हम प्रार्थना करेंगे।' विल्सनके प्रस्तावको कोई समर्थन नहीं मिला। सच यह है कि समर्थन या विरोध करने

जितनी शक्ति अब जहाजके यात्रियोंमें नहीं थी। कितने दिन कोई उपवास कर सकता है! अब उठने और बोलनेकी क्रिया जहाजके सारे यात्रियोंके लिए अत्यन्त कष्टसाध्य होती जा रही थी। जीवनसे प्रायः निराश हो चुके थे।

जहाजपर उसके यात्री आये और समुद्रका जमना प्रारम्भ हुआ। बहुत थोड़ी दूर जाकर जहाज रूक गया। पृथ्वी और जलका भेद मिट चुका था। एक श्वेत चद्दर— यात्रियोंको लगता था कि बूढ़ी पृथ्वी मर गयी है और उसे श्वेत वस्त्रसे ढक दिया गया है। मृत्यु—केवल मृत्यु दीखती थी उन्हें। मृत्युकी छाया काली होती है; किंतु उनके यहाँ तो उजली—असीम उजली, कोमल और शीतल रूप धारण करके मृत्यु आयी थी।

पूरा जहाज ढक गया हिमके अपार अम्बारमें। बाहरसे उसका कोई अंश दीखता भी है या नहीं—जहाज के यात्रियोंमें साहस नहीं था कि जहाजसे बाहर आकर यह देखें! बेचारे कुत्ते मर गये थे। स्लेज खींजनेमें उन्होंने प्राण होम दिये। मार्गमें हिमपात प्रारम्भ हो था। यात्री किसी प्रकार भागते-दौड़ते जहाजपर पहुँच गये, यही बहुत था। लेकिन अब इस सुरक्षाका क्या अर्थ! इतना ही कि अगली ऋतुमें कहीं कोई पता लगाने आया तो जहाजके भीतर उनके सिकुड़े शव उसे मिल जायँगे।

जल—केवल जल पीकर रहना था उन्हें और अन्तमें वह भी अलभ्य हो गया। भोजनका सामान और शराबकी

बोतलें कबकी समाप्त हो चुकी थीं। बहुत-सा उनका भाग स्लेज-गाड़ियोंके उपर मार्गमें ही छूट गया था। जहाजमें जो कुछ था—कितने दिन चल सकता वह? शीत असह्य हो गया। भोजन समाप्त होनेपर बार-बार जलकी आवश्यकता पड़ी। उष्णताकी प्राप्ति, बरफ गलाकर जल बनाना—सबका साधन था स्प्रिट लेम्प और अन्तमें स्प्रिट भी समाप्त हो गया।

'परमात्मा! मेरे परमात्मा! मैं जानता हूँ कि तू यहाँ भो है और मेरी प्रार्थना सुनता है।' विल्सनकी प्रार्थनामें अब वह अकेला रह गया है। अनाहार और मृत्युकी स्पष्ट मूर्तिने सबको निराश कर दिया है। किसीमें अब आशा नहीं कि प्रार्थनासे कुछ होगा—सच तो यह है कि अब कोई कुछ सोचता नहीं—सोचने योग्य नहीं—मृत्यु—मृत्युकी प्रतीक्षा कर रहे हैं सब। केवल विल्सन है जो नित्य दोनों समय—प्रार्थना कर लेता है। समयका अनुमान भी वहाँ घड़ीसे ही होता है। वह ठीक घड़ीकी भाँति समयपर हाथ जोड़कर घुटनोंके बल बैठकर बोलने लगता है—'मेरे प्रभु! मैं कुछ नहीं चाहता। केवल इतना—इतना ही कि मैं तुझे भूलूँ नहीं।'

अद्भुत जीव है यह विल्सन भी। इसका अनाहार सबसे पहले प्रारम्भ हुआ। सबसे दुबला यही है। स्प्रिट समाप्त होनेको आया—यह देखते ही इसने पानी भी बंद कर दिया। बरफके टुकड़े मुखमें रखकर चूस लेनेका अभ्यास सबसे पहले इसने किया। जिन्हें मांसाहार करना था, जिनकी नाड़ियोंका रक्त शराबकी उष्णतासे उष्ण

बनता रहा, जो बहुत पीछेतक कुछ-न-कुछ छीन-झपटकर पेटमें पहुँचा देते थे, वे सब मूर्छित-प्राय पड़े हैं और यह शाकाहारी, खौलाये पानीपर जीवित रहनेवाला विल्सन—यह अब भी उठ-बैठ लेता है, प्रार्थना कर लेता है।

साठ दिन—पूरे साठ दिन बीत चुके। आज विल्सन-को लगा, वह अन्तिम बार प्रार्थना करने बैठा है। उसका सिर घूम रहा है। उसके नेत्रोंके आगे अन्धकार फैल रहा है। उसका कण्ठ सूख गया है। 'परमात्मा!' केवल एक शब्द कह पाया वह। उसे लगा, अब गिरेगा—मूर्छा और मृत्यु वहाँ पर्यायवाची ही थे।

'कोई है? कोई जीवित है भाई?' जहाजके ऊपर डेकपरसे नीचे उतरनेके बन्द द्वारको कोई पीट रहा है। बार-बार पुकार रहा है—'परमात्माके लिए बोलो! एक बार बोलो!'

'कौन आवेगा यहाँ? भ्रम—भ्रम है मेरा।' विल्सन अर्धमूर्छित हो रहा था। लेकिन द्वार बराबर पीटा जा रहा था। बराबर कोई पुकार रहा था। अन्तमें लेटे-लेटे पेटके बल किसी प्रकार विल्सन खिसका।

'परमात्माके लिये शराब नहीं—गरम पानी।' द्वार खोलकर विल्सन गिरा और क्षणभरको मूर्छित हो गया; किंतु आगतोंमेंसे जब एकने उसके मुखसे बोतल लगाना चाहा—उसकी चेतना लौट आयी। उसने बोतल हटा दी मुखसे।

'जहाज जम गया है। हम साठ यात्री मृत्युकी घड़ियाँ गिन रहे हैं। भोजन और स्प्रिट समाप्त हो गया है। जहाजमें लगे बेतार-के-तारसे यह अन्तिम संदेश अमेरिकामें

सुना गया था। शीतके प्रारम्भमें जब हिमपात प्रारम्भ हो गया हो अंटारकटिकाकी यात्राकी बात सोचना ही अकल्पनीय है। सरकारी अधिकारी भी यात्रियोंके प्रति सहानुभूति ही प्रकट कर सकते थे।

समाचारपत्रोंमें यह दारुण समाचार छपा और एक तरुणने संकल्प किया उन हिम-समाधि लेते मनुष्योंके उद्धारका। बाधाओंकी गणना ही व्यर्थ हैं। जो सहायता दे सकते थे—उन्होंने भी रोकनेका ही प्रयास किया। लेकिन उसे यात्रा करनी थी। एक नहीं तो दूसरा—जो प्राण देकर परोपकार करनेको प्रस्तुत है, उसके सहायक संसारमें निकल ही आते हैं।

कुत्तों, स्लेज-गाड़ियों, बारहसिंगोंकी पूरी सेना मिल गयी उसे अंटारकटिकामें पहुँचनेपर भोले हिमग्रामके वासियोंसे। उसे गणना नहीं करनी थी कि कितने यूथ कुत्तों और बारहसिंगोंके हिमकी भेंट हो गये। उसे तो लक्ष्यपर पहुंचना था—ठीक समयपर पहुँच गया वह।

'हमारे यूथमें कुछ मादा बारहसिंगे हैं। तीन-चारने मार्गमें बच्चे दिये हैं। आपको हम दूध पिला सकते हैं।' जब जहाजके यात्री होशमें आये, कुछ पेटमें पहुँच जानेसे बोलने योग्य हुए, तरुणने विल्सनके सामने एक प्याला गरम दूध रख दिया। मूर्छित दशामें भी विल्सनको दूध पिला चुका था वह।

'हम प्रार्थना करेंगे।' दूध पीनेसे पहले विल्सन घुटनोंके बल वहीं बैठ गया। उसके पीछे पूरा समुदाय बैठ गया। 'यह उसकी प्रार्थनाका ही प्रभाव तो है जो वे आज उसके साथ प्रार्थना करने बैठ सकते हैं।'

आशा—उचित-अनुचित

'नम्बर सात ताला-जंगला सब ठीक है!' बड़े ऊँचे स्वरमें पुकारा पीले कपड़ेवाले नम्बरदारने। दूसरे बैरेकोंसे भी इसी प्रकारकी पुकारें लगभग उसी समय उठीं।

यह कारागारका तृतीय श्रेणीका बैरेक नम्बर सात है। संध्याकालीन भोजन हो चुकनेपर बंदी अपने फट्टे (मूँजकी रस्सीसे बनी चटाइयाँ), कम्बल, कपड़े लपेटे, तसला-कटोरी लिये दो पंक्तियोंमें बैठ गये थे। उनकी गिनती की गयी और फिर भरभराकर वे बैरेकमें घुस गये।

घुटनेसे नीचेतकका जाँघियाँ और बिना बाँहके कुर्त्ते। जाँघिया और कुर्त्ते दोनोंपर किन्हींके लाल मोटी धारी हैं, किन्हींके नीली धारी। लाल धारी बतलाती है कि बंदी पहली बार कारागार आया है और नीली धारी कहती है कि वह इससे पहले भी आ चुका है। किन्हीं-किन्होंने सिरपर लाल दुपलिया टोपियाँ भी लगा रक्खी हैं।

बीचमें डेढ़-दो हाथकी दूरी छोड़कर चबूतरे बने हैं सीमेंटके पंक्तिबद्ध। बंदियोंने अपने फट्टे चबूतरोंपर डाल दिये हैं। लोहेके तसलोंमें पानी कुछ ले आये हैं दौड़कर, कुछ ड्रमके पास भीड़ लगाये खड़े हैं। कुछके पास मिट्टीकी हँड़िया भी है पानी रखनेको। जिनकी फूट चुकी हैं,

इस ग्रीष्ममें उन्हें अपने तसलेके पानीसे रात्रिको प्यास बुझानी है, यदि कोई अन्य मित्र अपनी हँड़ियाका पानी देनेकी उदारता न दिखलावे। कारागार-अधिकारी दुबारा हँड़िया देनेसे रहे।

'सब अपने-अपने चबूतरेपर जल्दी बैठो !' नम्बरदार चिल्लाया और उसने हाथका डंडा हिलाया ! जैसे भेड़ोंको हाँकता हो, ऐसी ही चेष्टा—'जल्दी करो, गिनती करनी है।'

दो-चार मिनट उपेक्षा चल सकती है इस नम्बरदारकी। फिर वह गालीपर उतर आयेगा और कुछ कहो तो सवेरे 'पेशी' कर देगा जेलरके सामने। पानी गिनतीके बाद भी लिया जा सकता है। एक बार सब बैठ गये चबूतरोंपर—शान्त हो गये। अपने ही चबूतरेपर बैठे हों—आवश्यक नहीं था। एक चबूतरेपर दो व्यक्ति न हों, यह नम्बरदारने कहा; किंतु इसपर बल नहीं दिया उसने। अपनी गिनती पूरी करके उसे 'ताला-जंगला ठीक है' की घोषणा करनेकी जल्दी थी इस समय।

'कल मुझे छुटकारा मिल जायगा !' एक दुबले, गोरे रंगके अधेड़ व्यक्ति कह रहे थे—'मेरा भाई अवश्य मेरी जमानत कल कर देगा। कल न्यायालयमें मुझे जाना है।'

ये विचाराधीन बंदी हैं। अपनी सफेद कमीजमें रहते हैं और पाजामा भी इनका घरका ही है। दाढ़ी-मूँछके बाल बुरी तरह बढ़ गये हैं। यहाँ नाई हैं सही; किंतु विचाराधीन बंदीको उनकी सुविधा प्राप्त नहीं होती। तृतीय श्रेणीका बंदी दाढ़ी बनानेका अपना सामान साथ रख नहीं सकता।

'यह तो साक्षात् नरक है ! मच्छरोंके मारे सब बेचैन हैं। सबके हाथकी चट्पट् गूँज रही है। बैरेकमें ही एक कोनेपर इन साठ बँदियोंके मल-मूत्र-त्यागका स्थान है। उसकी दुर्गन्धि भरी है सब कहीं। जो थोड़े गिने-चुने चबूतरे खिड़कियोंके पास हैं—उनपर नम्बरदारके कृपा-पात्र या सशक्त लोग हैं। शेष इस दमघोटू वातावरणमें घुट रहे हैं। पसीना, मच्छर, दुर्गन्धि—ठीक तो कहते हैं वे कि यह नरक है।

'मुझे निरपराध फँसाया गया है !' सच-झूठकी राम जाने। यहाँ या तो लोग डींग हाँकते हैं या अपनेको निर्दोष बतलाते हैं; किंतु इनके-जैसा सीधा, चार बजे सुबहसे ही भजनमें लगने वाला—कुछ भी हो, ये कल यहाँसे मुक्त हो जायँ तो उत्तम।

'सब लोग अपने-अपने चबूतरेपर जाओ।' नम्बरदार-ने डंडा उठाया। अबतक लोग दो-दो चार-चार एकत्र बैठकर बातचीत कर रहे थे। थोड़ी देर उपेक्षा चली; किंतु नम्बरदारको कबतक टाला जा सकता है। वह घूम-घूमकर पुकार रहा है—'बातचीत एकदम बंद ! सब सो जाओ।'

बातचीत बन्द हो जायगी; किंतु यह गरमी, ये मच्छर, बत्तीके कारण उड़ते ये कीड़े-पतंगे और यह दुर्गन्धि—निद्रा क्या अपने वशमें है ?

× × ×

'मेरी जमानत नहीं हुई।' वही वातावरण, वही सायंकालके बादका समय, वही बैरेक। दूसरे दिन वे बहुत दुखी थे। न्यायालयसे लौटकर आये तबसे लगता था कि जैसे टूट चुके हैं। 'भाईने सीधे देखातक नहीं। वह मुख चुराकर चला गया।' आँसू गिर रहे थे नेत्रोंसे।

'संसारमें किसीसे भी आशा करना दुःख ही देता है!' बैरेकमें एक पण्डितजी हैं। सब उन्हें इसी नामसे पुकारते हैं। वे कारागार क्यों आये, पता नहीं; किंतु बड़े सज्जन और अद्भुत शान्त पुरुष। वे आ गये हैं इन्हें दुखी देखकर। समीप बैठ गये हैं और सान्त्वना देने लगे हैं।

'सब स्वार्थके साथी हैं। विपत्तिमें कोई साथ देनेवाला नहीं!' दुःख सान्त्वना पाकर पहले उबलता तो है ही।

'संसारके लोगोंसे आशा करना अनुचित है। यह आशा ही दुःखकी जड़ है।' पण्डितजीने स्नेहभरे स्वरमें कहा—'किंतु दुखी और निराश होनेकी तो कोई बात नहीं है। एक है, जिसपर पूरा भरोसा किया जा सकता है। जिससे लगी आशाको वह कभी विफल नहीं करता। कोई दुखी उसीकी ओर देखे तो वह सहायता न करे ऐसा कभी नहीं हुआ।'

'कोई नहीं है। मेरा कोई परिचित, कोई सम्बन्धी ऐसा नहीं जो अब मेरी सहायता करे।' उनकी घिग्घी बँध गयी।

'अच्छा है! संसारमें जिसका सहायक कोई नहीं है, श्यामसुन्दर उसका अपना है।' पण्डितजीकी वाणी गम्भीर हुई—'संसारसे आशा अनुचित है और उस दया-

मयसे आशा—उचित आशा एकमात्र यही है। आपने देख लिया कि लोगोंसे आशा करके क्या होता है। अब उसे पुकारकर देखिये!'

'वह सुनेगा मेरी?' संदेहके स्वर उठे—'आप स्वयं भी तो इसी घिनौने कारागारमें हैं।'

'मुझे यह अच्छा लगता है। उसने मेरे लिए कोई मंगल देखा होगा इस जीवनमें!' पण्डितजी बोले—'सब खटपटसे छूट गया। एकान्त है यहाँ। भजन-चिन्तन ठीक बनता है। उसे जो अच्छा लगे—मैं उसमें कोई कष्ट देखता नहीं अपने लिये; किंतु आप दुखी हैं, आर्त हैं। उसे पुकारिये। आर्तकी सच्ची पुकार उस दयाधामके यहाँसे कभी विफल नहीं लौटी।'

पण्डितजी जाकर सो गये अपने आसनपर; किंतु वे सज्जन पूरी रात बैठे रहे। उनकी हिचकी और आँसू रुकनेका नाम नहीं लेते थे।

घटना लगभग यहीं समाप्त हो जाती है। केवल इतना और बता देना है कि दूसरे दिन पण्डितजी दोपहरसे पहले ही कारागारसे बाहर हो गये। न्यायालयने उसी दिन उन्हें दोषमुक्त घोषित कर दिया और दौड़-धूपकर पण्डितजीने उन सज्जनको भी स्वयं जमानत देकर संध्या-से पूर्व ही कारागारसे बाहर कर लिया।

कोप या कृपा

'मातः !' बड़ा करुण स्वर था हिमभैरवका। यह उज्ज्वल वर्ण, स्वभावसे स्थिर-प्रशान्त, यदा-कदा ही क्रुद्ध होनेवाला रुद्रगण बहुत कम बोलता है। बहुत कम अन्य गणोंके सम्पर्कमें आता है। उग्रताकी अपेक्षा सौम्यता ही इसमें अधिक है। साम्बशिवकी एकान्त सेवा और स्थिर आसन; किंतु जब इसे क्रोध आता है—अन्ततः भैरव ही है, पूरा प्रलय उपस्थित कर देगा। किंतु आज यह बहुत ही व्यथित जान पड़ता है।

'तुम इतने कातर क्यों हो वत्स?' जगदम्बा शैलसुताने अनुकम्पापूर्वक देखा।

'ऋषिकुमार वर्चाने शाप दे दिया मुझे।' रोते हुए हिचकी बंध गयी हिमभैरवकी—'यक्षराजके सरोवरमें स्नान करके वे लौट रहे थे। सुकोमल हिममें चरणपात उन्होंने अपनी ही असावधानीसे किया; किंतु जब गिरे, रोष उन्हें मुझपर आया। उन्हें कोई आघात नहीं लगा। केवल जटाओं एवं वल्कलमें हिमकण भर गये थोड़े-से और वे कहते हैं कि 'हिमभैरव अब ऋषिकुमारोंसे परिहास-का प्रमाद करता है। उसे भगवान् शंकरके श्रीचरणोंमें

रहनेका अधिकार नहीं । वह मनुष्यजन्म ले !' आपके इन चरणोंसे पृथक् यह किंकर......।'

'डरो मत पुत्र !' अत्यन्त कातर, अपने चरणोंको अश्रुधारासे धोते गणको वात्सल्यकी उन अधिदेवताने अपने श्रीकरोंसे उठाया—'ऋषिकुमारकी वाणीको अन्यथा नहीं किया जा सकता ; किंतु उन्होंने मनुष्य-जन्म लेनेका ही तो शाप दिया है। मर्त्यलोकमें निवासकी अवधि तो निश्चित की नहीं है। तुम जन्म लो और फिर अविलम्ब वह देह त्यागकर मेरे समीप आ जाओ !'

'मैं भुवनेश्वरीको अम्बा कहता हूँ और अब कोई सामान्य मानवी मेरी जननी बनेगी !' हिमभैरवका रुदन रुका नहीं—'अपवित्र मर्त्यधरा मेरी जन्मभूमि और यमके दूत—रोग मुझे पराभव देंगे—मेरी मृत्युके हेतु बनेंगे !'

'वह सब तुमसे किसने कहा ?' माता पार्वतीने पुचकारा स्नेहपूर्वक—'मेरी प्रिय सखी बलया—नन्दीश्वरके शापसे वह मर्त्यनारी बनी। उसका निर्वासन मुझे व्यथित करता है। तुम उसकी गोदमें जा सकते हो। उसे भी तो तुम अम्बा ही कहते थे। तुम्हारा जन्म मेरे इस दिव्य प्रदेशमें होगा और मुझे बलयाको भी तो मुक्त करना है। मुक्त हो जायँगे उसके सम्पर्कमें आने वाले अन्य बहुत-से परिपूत प्राणी। तुम्हारा यह हिम तुम सबको शरीर-बन्धनसे मुक्त करेगा !'

'अनुकम्पा माताकी !' हिमभैरवने नेत्र पोंछ लिये। जगदम्बाके ज्योतिर्मय श्रीचरणोंपर उसने मस्तक रक्खा—

'अल्पतम अवधि वियोगकी बने इस शिशुके लिये !'

× × ×

'नाथ ! जबसे सावधान हुई, सचेत हुई, बड़ी नन्दाकी जत किसी वर्ष चुकाया नहीं मैंने। भगवती नन्दा (पार्वती) हम पर्वतीय जनोंकी परमाराध्या हैं !' महारानी बलयाने एकान्तमें बड़े ही अनुरोधभरे स्वरमें प्रार्थना की—'यात्राका समय समीप आ रहा है । महाराज अनुग्रह करें ! मैं आपको साथ चलनेका आग्रह नहीं करती ; किंतु अनुमति प्राप्त हो इस सेविकाको !'

'कठिन यात्रा है और इस समय तुम सरल यात्राके योग्य भी नहीं हो !' कान्यकुब्जेश्वर महाराज यशधवलका मुख गम्भीर हो गया। दो क्षण वे कुछ सोचते रहे—'किंतु इस अवस्थामें तुम्हारी किसी आकांक्षाको भग्न करना भी ठीक नहीं है। यात्राका संकल्प पवित्र है। मैं साथ चलूँगा और सब सुविधा रहेगी ; किंतु एक अनुरोध मेरा भी मानना होगा तुम्हें। यात्राकी किसी भी सीमासे तुम पदयात्रा करनेका आग्रह नहीं करोगी !'

'नहीं करूँगी देव !' महारानीने स्वीकार किया ! महाराज यशधवलको बड़ा प्रेम है अपनी इस पर्वतीय महारानीसे और अब तो महारानी अन्तर्वत्नी हैं। राज्यके प्रमुख ज्योतिषियोंने बताया है कि महारानीकी कुक्षिमें कुमार है। महाराजका और आदर बढ़ गया है महारानी बलयाके लिये।

यात्राका आदेश मिला सैनिकोंको और साथमें चिकित्सक, परिचारक आदि सबकी व्यवस्था हुई। यात्राके उत्सुक श्रद्धालुजनों तथा साधुओंको भी महाराज यशधवलने साथ ले लिया। उनके आहार-विश्रामकी व्यवस्था भी राजाने की।

आजके समान तीर्थयात्रा सुगम नहीं थी। वैसे 'बड़ी नन्दाकी जत' आज भी गढ़वालमें कठिन यात्राओंमें है और यह घटना तो आजसे लगभग ६ शती पूर्वकी है। मार्गमें शिविर पड़ते, कथा-कीर्तन, साधु-ब्राह्मणोंका सत्कार और मार्गके तीर्थोंपर स्नान-दान करते यह तीर्थयात्रीसमूह जा रहा था। कई मास मार्गमें लगेंगे, यह स्वाभाविक तथा पहलेसे जानी-समझी बात थी।

महाराज यशधवल जब 'गंगतोली' पहुँचे, महारानी बलयाको प्रसव-वेदना प्रारम्भ हुई। सैनिकों, बहुत-से सेवकों तथा साथके तीर्थयात्रियोंको महाराजने आगे चलनेका आदेश दिया और स्वयं महारानीके साथ रुक गये। चिकित्सक, परिचारक आदि थोड़े-से व्यक्ति गंगतोलीमें रुके। आगे जाने वाले दलने जिबरागिली ढालपर पड़ाव डाला था उस समय जब गंगतोलीमें महारानी बलयाकी गोदमें एक उज्ज्वल-हिमवर्ण पुत्र आया।

× × ×

'मातः!' भगवती उमाके सम्मुख आज उपस्थित थे भगवान् रुद्रके वे गणप्रमुख जिनके ऊपर हिमालयके पुष्प-

स्थलोंकी पवित्रताको अक्षुण्ण रखनेका दायित्व है। उन्होंने प्रार्थना की—'राजा यशधवलने नन्दाक्षेत्रकी पवित्रता भङ्ग की है। उस क्षेत्रमें उसकी रानीके पुत्र होनेसे क्षेत्र अशुचि हुआ है। रानी बलया आपकी अनुग्रह-भाजना हैं और उनका नवजात पुत्र तो आपका किंकर हिमभैरव........हम श्रीचरणोंकी आज्ञाके बिना कोई दण्ड-विधान करनेका साहस अपनेमें नहीं पाते।'

'बलया मेरे सांनिध्यसे बहुत काल निर्वासित रह चुकी और हिमभैरव तो प्रार्थना कर गया है कि उसके मर्त्य-शरीरकी आयु अल्पतम होनी चाहिये।' भगवतीने कृपा-पूर्वक आज्ञा दी—'इन दोनोंके जो भी सहचर हैं, उन्हें भी अब कैलास आ जाने दो! किंतु केवल हिमपातका ही विधान करना है तुम्हें। आधि-व्याधि या अन्य कोई दण्ड किसीको नहीं मिलेगा! किसीको कोई कष्ट अथवा आतङ्क प्राप्त नहीं होना चाहिये।'

'भगवतीकी जैसी आज्ञा!' गणप्रमुखोंने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया।

दो क्षण पश्चात् सहसा अतर्कित हिमपात प्रारम्भ हुआ 'जिबरागिली ढाल' के प्रदेशमें। इतना भयानक हिमपात कि किसीको उसे ठीक देखनेका समय भी नहीं मिला। उस ढालके ठीक नीचे 'रूपकुण्ड' है। जो लोग भी ढालपर थे, उनके शरीर हिममें जम गये और पीछे लुढ़ककर हिमके साथ रूपकुण्डमें पहुँच गये।

ठीक उसी समय 'गंगतोली' पर बड़े जोरसे ओले पड़ रहे थे। इन ओलोंकी वर्षामें महाराज यशधवल अपनी

पत्नी, नवजात पुत्र तथा सेवक-परिचारकोंके साथ निर्वाण प्राप्त हो गये।*

---

*चमोली जिलेमें मोटर बसके अड्डे 'ग्वालडाम' से ४१ मील दूर 'रूपकुण्ड' है। यह समुद्रकी सतहसे १६००० फीट ऊँचाईपर है और इसके चारों ओर खड़ी दीवारके समान पर्वत ८० से २५० फीट ऊँचे हैं। इसके ठीक ऊपर 'जिवरागिली ढाल' है। इससे १० मील दूर 'होम-कुण्ड' है। इस रूपकुण्डसे बहुत-से अस्थि-पञ्जर गत दो वर्ष पूर्व मिले थे। साथ ही कुण्डसे तलवारें, ढाल, सैनिक वस्त्र, भाले, कमण्डलु मालाएँ आदि भी मिली थीं। पुरातत्त्व-वेत्ताओंने इन अस्थि-पञ्जरोंको छः सौ वर्ष पुराना बताया है। यद्यपि 'ये अस्थिपञ्जर किनके हैं'—इस सम्बन्धमें इतिहासज्ञोंने अनेक प्रकारके अनुमान लगाये हैं और उनमें ऐकमत्य नहीं है; किंतु कुमाऊँ प्रदेशमें प्रचलित 'जागर' लोकगीतोंमें जो इस सम्बन्धमें कथा है, उसीका आधार इस कहानीमें लिया गया है। हिमालयमें अब भी ऐसे दिव्य क्षेत्र हैं—मुझे मिले हैं, जहाँ मल-मूत्र या थूक डालना मना है और कोई यह मर्यादा तोड़े तो वहाँ ओले पड़ने लगते है। —लेखक

कलियुगके अन्तमें

(आपने यदि वैज्ञानिक कही जानेवाली कहानियोंमेंसे कोई पढ़ी हैं तो देखा होगा कि किस प्रकार दो-चार शती आगेकी परिस्थितिका उनमें अनुमान किया जाता है और वह अनुमान अधिकांश निराधार ही होता है। यह कहानी भी उसी प्रकारकी एक काल्पनिक अनुमान मात्र प्रस्तुत करती है; किंतु यह सर्वथा निराधार नहीं है। पुराणोंमें कलियुगके अन्त समयका जो वर्णन है, वह सत्य है; क्योंकि पुराण सर्वज्ञ भगवान् व्यासकी कृति हैं। उनमें भ्रम, प्रमाद सम्भव नहीं है। अतः उन पुराणोंके वर्णनोंको मुख्याधार बनाकर कल्पनाने कहानीको यह आकार दिया है। अवश्य ही आजके सामान्य स्वीकृत एवं सम्भाव्य वैज्ञानिक तथ्योंको दृष्टिमें रक्खा गया है।

यह कलिसंवत् ५०६४ है विक्रम संवत् २०२० में। कलियुगकी कुल आयु (पूरा भोगकाल) ४३२००० वर्ष है। इसलिये यह कहानी लगभग ४२६९०० वर्ष आगेके सम्बन्धमें है और उस समयकी स्थितिका एक दृश्य उपस्थित करती है।

इसका प्रयोजन? अनेक बार लोग इस भ्रममें पड़ते

हैं कि कल्कि अवतार हो गया या निकट वर्षोंमें होनेवाला है। यह प्रचार भी कुछ लोग करते हैं, किन्हीं भ्रान्तियोंके कारण अथवा कुछ निहित स्वार्थोंके कारण। ऐसी दशामें यह कहानी इतना तो सूचित कर ही देती है कि शास्त्र-पुराणोंके अनुसार कल्कि अवतार जिस समय होगा, उस समयकी सामाजिक अवस्था किस स्तरपर पहुँच चुकी होगी और मुख्य घटनाएँ क्या होंगी। उनके प्रमुख पात्र कौनसे होंगे। इस विशेष कहानीके लिये इतना स्पष्टीकरण आशा है, पर्याप्त होगा।'

× × ×

'यह पुरुवंशो प्रतोपात्मज देवापि राजर्षि मरुको अभिवादन करता है!' हिमालयका अत्यन्त दुर्गम दिव्य-देश कलाप ग्राम, जो नित्यसिद्ध योगियोंकी साधनभूमि है; जो मनुष्य तो दूर, गन्धर्वादि उपदेवताओंके लिये भी अगम्य एवं अदृश्य है, उसी सिद्धभूमिमें आज कुछ हलचल जान पड़ती थी। जहाँ अखण्ड शान्ति, नित्य उद्रिक्त सत्वगुण सदा रहता है, वहाँ किञ्चित् भो रजस-क्रियाका उद्भव आश्चर्यकी ही बात है। पूरा युग लक्ष-लक्ष वर्ष व्यतीत हो गये, ऐसा तो कभी नहीं हुआ कि प्रयत्न करने पर भी समाधिमें चित्तकी स्थिति न हो। विवशतः राजर्षि देवापि अपने आसनसे उठे। द्वापरका जब अन्त होनेवाला था, उससे कुछ ही पूर्व ये भीष्मपितामहके पिता शान्तनुके बड़े भाई यहाँ आये थे। इस साधनभूमिमें इनका साधन-

काल सबसे थोड़ा रहा था। महर्षियोंके समीप जाकर उनके एकान्तमें बाधा देना ठीक नहीं लगा, अतएव अपनेसे कुछ ही शताब्दी पूर्व साधन-दीक्षित होनेवाले राजर्षि मरुके समीप वे चले आये। यह सिद्ध भूमि, यहाँ शताब्दियों-का मूल्य हमारे आपके घंटों जितना भी कठिनाईसे ही होगा। राजर्षि मरु द्वापरके प्रारम्भमें (त्रेताके व्यतीत होनेके कुछ पीछे) आये थे। केवल कुछ लाख वर्ष पहिले —देवापिको वे अपने सहाध्यायी-जैसे लगते थे और दोनों राजर्षियोंमें अच्छी मैत्री भी हो गयी थी यहाँ आकर।

'इक्ष्वाकुवंशीय शीघ्रका पुत्र यह मरु राजर्षि देवापिका अभिवादन करके उनका अभिनन्दन करता है।' मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामके पुत्र कुशके वंशमें अग्निबर्णके पौत्र हैं ये राजर्षि मरु। ये भी ध्यानस्थ नहीं थे। उठकर देवापि-को अंकमाल दी और आसन अर्पित किया उन्होंने।

आजकी दृष्टिसे असाधारण, अकल्पनीय, दीर्घकाय, प्रलम्बबाहु, कमलदल-विशाल लोचन, उन्नत नासिका, प्रशस्त भाल एवं वक्ष और पाटल गौर वर्ण, अत्यन्त सुन्दर, सुगठित, किञ्चित् तपःकृश देह, जटाजूट, बड़े श्मश्रु केश, केवल वल्कल परिधान—दोनों ही स्रष्टाकी अनुपम कृति लगते थे। राजर्षि मरुका शरीर देवापिसे विशाल था और आयुमें भी वे बड़े थे। देवापि उनका सम्मान यपने अग्रजके समान करते थे; किंतु राजा मरु सदा देवापिको अपना समकक्ष मित्र ही मानते हैं।

'आज कुछ अकल्पनीय होनेवाला लगता है।' देवापिने कहा—'अनेक बार प्रयत्न करके भी एकाग्र नहीं हो सका

हूँ। जैसे कोई आकर्षण नीचे जनाकीर्ण जगत्‌की ओर खींच रहा है।'

'आप जानते ही हैं कि हम दोनों स्रष्टाके एक संकल्प-विशेषके यन्त्र हैं।' राजर्षि मरु बोले—'स्वयं मेरी भी आज यही अवस्था है। लगता है कि वह समय आ गया, जब हम दोनोंको कार्यक्षेत्रमें जाना होगा। भगवान् ब्रह्माने मेरे रूपमें सूर्यवंशका बीज यहाँ सुरक्षित किया था और आप चन्द्रवंशके मूल पुरुष बनेंगे निकटके सत्ययुगमें। सम्भव है, अब इन बीजोंके विस्तारका काल आ चुका हो।'

'वत्स! रजस्‌का लेश भी यहाँ वर्जित है। सहसा दोनों ही राजर्षियोंके हृदयमें कोई अलक्ष्य वाणी गूँजी—'तुम्हारा साधनकाल पूर्ण हो गया। सृष्टिकर्ताकी इच्छासे तुममें रजस् अंकुरित होने लगा है। अतः अब तुम कर्मभूमिमें पधारो।'

'आदेश आ गया!' वहाँ प्रत्यक्ष मिलन कोई महत्त्व नहीं रखता। अदृश्य-दृश्यका भेद नगण्य है। मनका संकल्प परस्पर विचारविनिमय, उपदेशग्रहण एवं आदेश-प्राप्तिका सुपरिचित माध्यम है उस सिद्ध स्थलीमें। दोनों राजर्षियोंने हाथ जोड़कर सिर झुकाया और एक साथ वहाँसे चले।

× × ×

'मनुष्य हैं ये?' राजर्षि मरु एवं देवापिके सम्मुख

तो आजके मनुष्योंका आकार ही अत्यल्प है, कलिके अन्तमें तो उन्हें तीनसे चार फीटतकके ही मनुष्य सर्वत्र मिलने थे। इनके मध्य रहना सम्भव होगा ?'

'हम सीधे महेन्द्राचलपर चलेंगे !' थोड़ी देर भगवती भागीरथीके तटपर हरद्वारमें ध्यानस्थ रहकर दोनों राजर्षि उठे—'इस आगामी चतुर्युगीके युग-निर्माता एवं शास्त्र-निर्देशक भगवान् परशुराम हैं। उनके पावन चरणोंमें प्रणिपात करके हमें आदेशकी अपेक्षा करनी है।'

'धन्य हो गया सम्भल ग्राम ! पवित्र हो गया विप्र-श्रेष्ठ विष्णुयशका कुल। भगवान् कल्किरूपमें अवतीर्ण हुए।' भगवान् परशुरामने स्वयं गद्गद् स्वरमें कहना प्रारम्भ किया ! मरु और देवापिकी जैसे वे प्रतीक्षा ही कर रहे थे। दोनोंने जब चरणोंमें मस्तक रक्खा, भार्गवने एक साथ भुजाओंमें भर लिया उन्हें। स्वयं ही चिर-परिचितकी भाँति—जैसे पिता पुत्रोंसे मिले और अपने संवाद दे कहने लगे—'अभी आज ही वे लोकमहेश्वर यहाँसे गये हैं। किंतु तुम दुखी मत हो। तुम दोनों तो उनके परम प्रिय हो। वे स्वयं तुम्हारे भवन पधारेंगे !'

'हमारे भवन ?' मरुने चकितभावसे पूछा। भला उनकी तो कहीं झोंपड़ी भी नहीं है।

'हां, अब तुम गार्हस्थ्य स्वीकार करो !' परशुरामजी वात्सल्य-गद्गद् कह रहे थे—'मैं तुम्हारे पुत्र-पौत्रोंको श्रुति-शास्त्र तथा शस्त्रकी भी शिक्षा दूँगा। ये जटाएँ आज विसर्जित करो और सूर्य-चन्द्र वंशोंके राज्य स्थापित करो इस पुण्यभूमिमें।'

'वे निखिल गुरु!' भगवान् परशुराम भाव-विह्वल हो रहे थे। वे पुनः कल्किका वर्णन करने लगे—'इस जनको उन्होंने गौरव दिया। उन्हें कहाँ अध्ययन करना और सीखना रहता है। श्रुति उनका निःश्वास है। मृत्यु उनके संकल्पकी छाया; किंतु यहाँ वे अत्यन्त विनम्र सेवापरायण बने रहे। उन्होंने समस्त शास्त्र, साङ्गवेद एवं समस्त अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षा ग्रहण करनेका नाट्य किया। गुरुका गौरव दिया इस जनको।'

'वे परम प्रभु किधर·····?'

'वे उग्रतेजा-रूपमें इस बार प्रकट हुए हैं।' परशुराम-जीने प्रश्नका तात्पर्य समझ लिया—'उन सहस्र सूर्य-समप्रभका अङ्गवर्ण भी नेत्रोंको आकलन नहीं हो पाता। तुम जानते हो कि इस भार्गवने भूमिको इक्कीस बार निःक्षत्र किया और नौ शोणितह्रद बनाये कुरुक्षेत्रमें। किंतु आज तुच्छ है वह परशु। भगवान् देवेन्द्रके द्वारा प्रदत्त उच्चैःश्रवाकी पीठपर वायुके वेगसे रौंद रहे हैं धराको। उनके करकी कराल करवाल··········तुम दर्शन करोगे उनके?'

'देव! दयामय!' आर्तनाद कर उठे दोनों तपस्वी। भगवान् परशुरामके अनुग्रहसे प्राप्त दिव्य-दृष्टिसे जो कुछ उन्होंने देखा, असह्य था वह उनके लिये। प्रचण्ड वायुके वेगसे दौड़ता हरितवर्ण श्यामकर्ण अश्व और उसकी पीठपर केश बिखेरे, नेत्रोंमें प्रलयकी ज्वाला लिये, कोटि-कोटि भास्करके समान उग्रतेजा, अरुणवर्ण खड्गहस्त वे परम पुरुष! पृथ्वी जैसे सम्पूर्ण रक्तके सागरमें डूब जायगी!

तिनकों-जैसे उड़ते-उछलते शव । अश्वके खुर रौंद रहे हैं राशि-राशि प्राणियोंको । समूहके-समूह मनुष्य खड्गसे कटते जा रहे हैं । क्रन्दन, शव, रक्त—कोई कुछ समझे, इससे पूर्व तो महामृत्यु बनी तलवार टुकड़े उड़ा जाती है । नगर-ग्राम देश-द्वीप—प्रलयंकर-सा घूमता अश्व और उसके पीछे उमड़ता रक्तका सागर ! असह्य था यह दृश्य !

'अभय वत्स !' आश्वासन दिया भगवान् परशुरामने । युग बीत गये, उर्वी अन्न-फल उत्पन्न नहीं करती । मनुष्योंने कृत्रिम उर्वरकोंका इतना उपयोग किया कि धरा बंजर बन गयी । समुद्री काई और सेवारको आहार बनाया नरोंने ; किंतु अपने ही आविष्कृत अद्भुत स्फोटकोंसे उस सागरीय आहारको भी उन्होंने विषैला बना लिया । गोधूम और शालि यदि कहीं अब मिलेंगे भी तो वे श्यामकके समान अणुप्राय रह गये हैं । इस रक्त-कर्दमसे धराको उर्वरा बनने दो । इस समय तो मानव आमिष, फल, पत्र, छाल, काष्ण, तृण आदिके आहारपर जीता है और वह भी विडम्बना-प्राय हैं । वृक्षोंमें शमी तथा वैसे ही कण्टक-वृक्ष, फलोंमें झाड़ियोंके बदरीफल और आमिष पाता है मानव कृमियों तथा सरीसृपोंका । पशु-पक्षियोंका वंश, पता नहीं कब उसके उदरमें जा चूका ।'

'यह हीनसत्त्व हीनाकार कदर्य मानव········ !' मरुने खिन्न स्वरमें कहा, 'अपने मस्तिष्कपर बड़ा गर्व किया इसने ; किंतु अपने गर्वमें यह अपने ही आविष्कारों-

का आखेट हो गया ।' खिन्न स्वर ही था भगवान् परशुरामका भी—'इसने ऐसे स्फोटक निर्मित किये कि युद्ध करके उनके द्वारा इसीके सब आविष्कार, सब नगर समाप्त हो गये। वन्य प्राणी बन गया यह स्वयंके विनाशक कृत्योंसे । और दूसरा परिणाम भी क्या होता। ईश्वरकी सत्ता तथा धर्म, परलोक आदिको इसने पहिले ही अस्वीकार कर दिया था। स्थूल भोगोंको ही महत्ता देनेका परिणाम जो विनाश होता है, अनिवार्य बना वह ।'

'और अब यह दीन पशुप्राय मानव ·····।' देवापि बोल नहीं सके।

'कीटप्राय कहो वत्स !' भार्गव बता रहे थे—'इसकी परमायु आज बीस या तीस वर्ष है। सामान्यतः तो दस-पंद्रह वर्ष पूर्णायु हो गयी है। इन्द्रिय-भोग मात्र जीवन और वे भोग—जो जिसे स्वीकार कर ले जवतकको, वह उसका उतने कालका पति। जैसे भी हत्या-चोरीसे पेट भरे, वही जीविका। जो दूसरोंको दबाने, छीनने, मारनेमें समर्थ हो, वह शासक। शूद्र-प्राय दस्युबहुल ये मानव! इनके भारसे धरा कलुषित हो गयी है!'

'इनमें हम जो सृजन करेंगे········?' मरुकी शंका उचित ही थी। 'कुछ थोड़े संयमी, भावुक भी हैं।' भगवान्ने बताया—'दस्यु तो भगवान्की तलवारकी धाराने समाप्त किये ही समझो! उन सत्त्वमूर्ति प्रभुके अङ्गरागकी पावन गन्ध अब शेष रहे लोगोंके चित्त निर्मल कर देगी। अब उनकी संतान शुद्धशील होगी और युगका प्रभाव

उसे उचित दीर्घ आकार भी प्रदान करेगा !'

'श्रीचरण जो आदेश करेंगे' मरुने विनम्रतापूर्वक कहा—'इन सेवकोंको उसका पालन करना ही है ; किंतु—'

'जीवनकी सफलता श्रीहरिके चरणोंमें भक्ति है और वह तुम्हें प्राप्त है। भगवान् कल्कि स्वयं पधारेंगे तुम्हारे सदन !' परशुरामजीने आश्वासन देते हुए आदेश दिया—'जो मानव बचे भी हैं, वे शूद्रप्राय हैं। दीर्घ-कालसे वर्णाश्रमका सर्वथा लोप हो चुका है। क्रिया-लोपसे द्विज भी व्रात्य हो गये और फिर वर्ण संकर हो गया। अतः इनकी संतति शूद्र ही होगी। तुम दोनों क्षत्रियवंशकी प्रतिष्ठा करो। तुम्हारी संतानोंमें आगे कुछ स्वयं वैश्यवर्ण अपना लेंगे। ऋषि भी धराको धन्य करने कलापग्रामसे आ रहे है। ब्राह्मणोंका कुल उनके द्वारा स्थापित हो जायगा। मरुके द्वारा सूर्यवंशकी परम्परागत राजधानी अयोध्या और चन्द्रवंशका पवित्र-क्षेत्र प्रतिष्ठान-पुर अब देवापिके द्वारा पूर्व प्रतिष्ठाको प्राप्त करे।'

'श्रीचरणोंकी प्रतीक्षा करेंगे हम !' दोनोंने साष्टाङ्ग प्रणिपात किया।

'प्रजापति स्वयं तुम्हारी सहधर्मिणियोंका विधान करेंगे।' भगवान् परशुरामने आशीर्वाद देकर बताया—'तुम्हारी संततिको शस्त्र एवं शास्त्रकी शिक्षा देने मुझे आना ही है !'

———

भाग्य-भोग

'भगवन् ! इस जीवका भाग्य-विधान ?' कभी-कभी जीवोंके कर्मसंस्कार ऐसे जटिल होते हैं कि उनके भाग्यका निर्णय करना चित्रगुप्तके लिये भी कठिन हो जाता है। अब यही एक जीव मर्त्यलोकसे आया है। इतने उलझन-भरे इसके कर्म हैं—नरकमें, स्वर्गमें अथवा किसी योनि-विशेषमें कहाँ इसे भेजा जाय, समझमें नहीं आता। देह-त्यागके समयकी इसकी अन्तिम वासना भी (जो कि आगामी प्रारब्धकी मूल निर्णायिका होती है) कोई सहायता नहीं देती। वह वासना भी केवल देहकी स्मृति—देह रखनेकी इच्छा है। ऐसी अवस्था आनेपर चित्रगुप्तके पास एक ही उपाय है, वे अपने स्वामीके सम्मुख उपस्थित हों।

धर्मराजने चित्रगुप्तसे उस जीवका कर्मलेख लिया और उसे लगभग बिना पढ़े ही उसके आगामी प्रारब्धके तीनों कोष्ठक भर दिये। चित्रगुप्तने देखा जातिके कोष्ठक-में लिखा है—मनुष्य-श्वपच, आयुके कोष्ठकमें उदारता-पूर्वक १०२ की संख्या है; किंतु भोग—भोगका विवरण

देखकर चित्रगुप्तको लगा कि आज संयमनीपति विशेष क्रुद्ध हैं।

चित्रगुप्त कभी नहीं समझ सके कि जीवका जो कर्म-विधान उनको इतना जटिल लगता है, धर्मराज कैसे उसका निर्णय बिना एक क्षण सोचे कर देते हैं। यम एक मुख्य भागवताचार्य हैं और भक्तिका—भक्तिके अधिष्ठताका रहस्य जाने बिना, उसकी कृपाकोरकी प्राप्तिके बिना कर्मका—धर्माधर्मका ठीक-ठीक रहस्य-ज्ञान नहीं होता, यह बात चित्रगुप्तजी नहीं समझेंगे। वे तो कर्मके तत्त्वज्ञ हैं और कर्माकर्मकी कसौटीपर ही सब कुछ परखना जानते हैं; किंतु जब उनकी कसौटी उन्हें उलझनमें डाल देती है—यमराज कर्मके परम निर्णायक हैं। उनके निर्णयकी कहीं अपील नहीं, अतः वे बिना हिचके निर्णय कर देते हैं। यह चित्रगुप्तजीके चित्तका समाधान है; किंतु धर्मके निर्णायकको आवेशमें तो निर्णय नहीं करना चाहिये।

'यह अभागा जीव!' यमपुरीके विधायक, यमराजके मुख्य सचिव चित्रगुप्त—उन्हें किसी जीवको नरकका आदेश सुनाते किसीने हिचकते नहीं देखा और आज वे क्षुब्ध हो रहे थे—'कैसे सहन कर सकेगा यह इतने दारुण दुःख? इतना दुःखदायी विधान एक असहाय प्राणीके लिये!'

'संयमनीके मुख्य सचिव प्राणीके सुख-दुःखके दाता कबसे हो गये?' चित्रगुप्त चौंक उठे। उन्होंने अपनी चिन्तामें देखा ही नहीं था कि देवर्षि नारद उनके सामने

आ खड़े हुए हैं। उन्होंने प्रणिपात किया देवर्षिको ?

'धर्मराजको स्रष्टाने केवल जाति आयु और भोगके निर्णयका अधिकार दिया है।' देवर्षिने अपना प्रश्न दुहराया—'स्थूल शरीरतक ही कर्म अपना प्रभाव प्रकट कर सकते हैं, किंतु देखता हूँ ; धर्मराजके महामन्त्री अब जीवके सुख-दुःखकी सीमाके स्पर्शकी स्पर्धा भी करने लगे हैं।'

'ऐसी धृष्टता चित्तमें न आवे, आप ऐसा अनुग्रह करें।' चित्रगुप्तने दोनों हाथ जोड़े—'किंतु इतना दारुण भोग प्राप्त करके भी जीव दुखी न हो, क्या सम्भव है ?'

'असम्भव तो नहीं है। शरीरकी व्यथा प्राणीको दुखी ही करे—आवश्यक नहीं है।' देवर्षिने चित्रगुप्तजीके सम्मुख पड़ा कर्म-विधान सहज उठा लिया।

'स्वयं धर्मराजने यह विधान किया है।' चित्रगुप्त डरे। परम दयालु देवर्षिका क्या ठिकाना, कहीं इतना कठोर विधान देखकर वे रुष्ट हो जायँ—उनके शापको स्वयं स्रष्टा भी व्यर्थ करनेमें समर्थ नहीं होंगे।

'कुबड़ा, कुरूप, बधिर, मूक, शैशवसे अनाथ, अनाश्रय, उपेक्षित, उत्पीड़ित, मान-भोग- वर्जित, नित्य देहपीड़ा-ग्रस्त मरुस्थल-निर्वासित······।' देवर्षिके साथ डरते-डरते चित्रगुप्त भी उस जीवके भोगके कोष्ठकमें भरे गये विधानको पुनः पढ़ते जा रहे थे मन-ही-मन। कहीं तो उसमें कुछ सुख-सुविधा मिलनेका कोई संयोग सूचित किया गया होता।

'अतिशय दयाल हैं धर्मराज।' चित्रगुप्तकी आशाके

सर्वथा विपरीत देवर्षिके मुखसे उल्लास व्यक्त हुआ—'इस प्राणीको एक साथ स्वच्छ कर देनेकी व्यवस्था कर दी उन्होंने। विपत्ति तो वरदान है श्रीनारायणका।'

अब भला इन ब्रह्मपुत्रसे कोई क्या कहे और इन्हें ही इतना अवसर कहाँ कि किसीकी बात सुननेको रुके रहें। चित्रगुप्तके कर्म-विधानका पोथा पटका उन्होंने और उनकी वीणाकी झंकार दूर होती चली गयी।

× × ×

महाराजाको सवारी निकली थी नगर-दर्शन करने। यह भी कोई बात है कि उनके सामने राजपथपर कोई कुबड़ा, गूँगा, काला, कुरूप चाण्डाल बालक आ जाय। राज-सेवकोंने उसे पीट-पीटकर अधमरा कर दिया और घसीट-कर मरे कुत्तेके समान दूर फेंक दिया।

'कौन था यह ?' महाराजाने पूछा।

'एक श्वपचाका पुत्र !' मन्त्रीने उत्तर दे दिया।

'इसके अभिभावक इसे पथसे दूर क्यों नहीं रखते ?' महाराजाका क्रोध शान्त नहीं हुआ था।

'इसका कोई अभिभावक नहीं।' कुछ देर लगी पता लगानेमें और तब मन्त्रीने प्रार्थना की—'माता-पिता इसके तब मर गये, जब यह बहुत छोटा था, अब तो यह इसी प्रकार भटकता रहता है।'

'नगरका अभिशाप है यह !' महाराजाको कौन कहे कि गर्वके शिखरसे नीचे आकर आप देखें तो वह भी

आपके समान ही सृष्टिकर्ताकी कृति है ; किंतु धन, अधिकारका मद मनुष्यकी विवेक-दृष्टि नष्ट कर देता है। महाराजने आदेश दे दिया—'इसे दूर मरुस्थलमें निर्वासित कर दिया जाय। राजधानीमें इतनी कुरूपता नहीं रहनी चाहिये।'

छोटा-सा अबोध बालक। वैसे ही वह दर-दरकी ठोकरें खाता फिरता था। कूड़ेके ढेरपरसे छिलके उठाकर उदरकी ज्वाला शान्त करता था। लोग दुत्कारते थे। बच्चे पत्थर मारते थे। वृक्षके नीचे भी रात्रि व्यतीत करनेका स्थान कठिनतासे पाता था और अब उसे नगरसे भी निर्वासित कर दिया गया। हाथ-पैर बाँधकर ऊँटपर लादकर एक राजसेवक श्वपच उसे मरुभूमिमें ले गया और वहाँ उसके हाथ-पैर उसने खोल दिये।

अंगमें लगे घाव पीड़ा करते थे। मरुस्थलकी रेत तपती थी और ऊपरसे सूर्य अग्निकी वर्षा करते थे। आँधियाँ मरुभूमिमें न आयेंगी तो आयेंगी कहाँ ; लेकिन मृत्यु उस बालकके समीप नहीं आ सकती थी। उसके भाग्यने उसे जो दीर्घायु दी थी—कितनी बड़ी विडम्बना थी उसकी वह दीर्घायु।

जब प्याससे वह मूर्छित होनेके समीप होता, कहीं-न-कहीं रेतमें दबा मतीरा उसे मिल जाता। खेजड़ीकी छाया उसे मध्याह्नमें झुलस जानेसे बचा देती थी। मतीरा ही उसकी क्षुधा भी शान्त करता था। वैसे उसे मरुस्थलके मध्यमें एक छोटा जलाशय मिल गया बहुत शीघ्र और वहाँ कुछ खजूरके वृक्ष भी मिल गये, किन्तु

खजूर बारहमासी फल तो नहीं है।

इस भाग्यहीन बालकका स्वभाव विपत्तियोंको भोगते-भोगते विचित्र हो गया था। बचपनमें तो वह रोता भी था; किंतु अब तो जब कष्ट बढ़ता था तो वह उलटे हँसता था—प्रसन्न होता था। अनेक बार उसे मरुस्थलके डाकू मिले और उन्होंने जी भरकर पीटा। वह उस पीड़ामें खूब हँसा—मानो उसे पीड़ामें सुख लेनेका स्वभाव मिल गया हो।

वह क्या सोचता होगा? वह जन्मसे मूक और बधिर था। शब्दज्ञान उसे था नहीं। अतः वह कैसे सोचता होगा, यह मैं नहीं समझ पाता हूँ। लेकिन वह कुछ काम करता था। दिन निकलता देखता तो सूर्यके सम्मुख पृथ्वीपर बार-बार सिर पटकता। आँधी आती तो उसे भी इसी प्रकार प्रणाम करता और कभी आकाशमें कोई मेघखण्ड आ जाय तो उसे भी। खेजड़ीके वृक्षको, जलाशय-को और यदि कभी कोई दस्युदल आ जाय तो उन लोगोंको तथा उनके ऊँटोंको भी वह इसी प्रकार प्रणिपात किया करता था।

दूसरा काम वह प्रायः प्रतिदिन यह करता कि खेजड़ी-की एक डाल तोड़ लेता और विभिन्न दिशाओंमें दूर-दूरतक एक निश्चित दूरीपर उसके पत्ते टहनियाँ तबतक डालता जाता—जबतक मध्याह्नकी धूप उसे छायामें बैठ जानेको विवश न कर देती। अनेक बार उसके डाले इन पत्तोंके सहारे मरुस्थलमें भटके यात्री एवं दस्यु उसके जलाशयतक पहुँचे थे। अनेक बार उन दस्युओंने उसे

पीटा था। बहुत कम बार किसी यात्रीने उसे रोटीका टुकड़ा खानेको दिया। लेकिन उसने खेजड़ीके पत्ते डालनेका काम केवल तब बंद रक्खा, जब वह ज्वरसे तपता पड़ा रहता था।

मरुस्थलमें एकाकी, दिगम्बर, असहायप्राय भूख-प्याससे संतप्त रहते वर्ष-पर-वर्ष बीतते गये उसके। बहुत बीमार पड़ा और बार-बार पड़ा ; किंतु मरना नहीं था, इसलिये जीवित रहा। बालकसे युवा हुआ और इसी प्रकार वृद्ध हो गया। उसकी देहमें हड्डियों और चमड़ेके अतिरिक्त और था भी क्या। अनेक बार यात्री उसे प्रेत समझकर डरे थे।

दुर्भाग्य ही तो मिला था उसे। एक अकालका वर्ष आया और वह नन्हा जलाशय सूख गया जो वर्षोंसे उसका आश्रम रहा था। खेजड़ीमें पत्तोंके स्थानपर काँटे रह गये। उसे वह स्थान छोड़कर मरुस्थलमें भटकना पड़ा।

अंधड़से रेत नेत्रोंमें भर गयी। प्यासके मारे कण्ठ सूख गया। गलेमें काँटे पड़ गये और अन्ततः वह मूर्छित होकर गिर पड़ा।

सहसा आकाशमें उत्तङ्क मेघ प्रकट हुए जो केवल राजस्थानकी मरुभूमिमें कभी-कभी—कुछ शताब्दियोंके अन्तरसे प्रकट होते हैं। बड़ी-बड़ी बूंदोंकी बौछारने उसके संतप्त शरीरको शीतल किया। उसने नेत्र खोलनेकी चेष्टा की ; किंतु उनमें रेत भर गयी थी। देहमें भयंकर ताप था। वह जीवनमें पहिली बार वेदनासे चीखा—

मूककी अस्पष्ट चीत्कार उसके कण्ठसे निकली ।

उत्तङ्क मेघ उसके लिये तो नहीं आये थे। मरुकी राशि-में शतियोंसे समाधिस्थ महर्षि उत्तङ्क उठे थे समाधिसे। उनकी तृषा शान्त करनेके लिये मेघ आते हैं । महर्षिने अपने समीपसे आयी वह चीत्कार-ध्वनि सुनी और आगे बढ़ आये ।

कृष्णवर्ण, कुब्ज, श्वेत केश, कंकालमात्र एक मानवा-कार प्राणी रेतमें पड़ा था। अब भी वह अपने नेत्रोंसे रेत ही निकालनेके प्रयत्नमें था। महर्षिकी दृष्टि पड़ी। वे सर्वज्ञ—उन्हें कहाँ सूचित करना था कि उनके सम्मुख पड़ा प्राणी बोलने और सुननेमें असमर्थ है । लेकिन महर्षिका संकल्प तो वाणीकी अपेक्षा नहीं करता। उनकी अमृत दृष्टि पड़ी उस सम्मुखके प्राणीपर और फिर वे अपनी साधना-भूमिकी ओर मुड़ गये ।

× × ×

कुछ मास (क्योंकि देवताओंका दिन मनुष्योंके छः महीनेके बराबर होता है और उतनी ही बड़ी होती है उनकी रात्रि) व्यतीत हुए होंगे, चित्रगुप्तजीके और एक दिन पुनः देवर्षि नारद संयमनी पधारे।

'आपके उस अतिशय भाग्यहीन जीवकी अब क्या स्थिति है ?' धर्मराजका सत्कार स्वीकार करके जाते समय देवर्षिने सहसा चित्रगुप्तसे पूछ लिया—'जीवनमें भाग्यका भोग उनको कितना दुखी कर सका, यह विवरण

तो आपके समीप होगा नहीं।'

'आपका अनुग्रह जिसे अभय दे दे, कर्मके फल उसे कैसे उत्पीड़ित कर सकते हैं ?' चित्रगुप्तने नम्रतापूर्वक बताया—'वे महाभाग देहकी पीड़ा, अभाव, असम्मानसे प्रायः अलिप्त रहे।'

'अनुग्रह तो उनपर किया था धर्मराजने।' देवर्षिने सहजभावसे बतलाया—'भोग-विवर्जित करके संयमनीके स्वामीने उन्हें अनेक दोषोंसे सुरक्षित कर दिया था। आपत्तियोंने उन्हें निष्काम बनाया। विपत्तिका वरदान पाये बिना प्राणीका परित्राण कदाचित् ही हो पाता है।'

'महर्षि उत्तङ्कके अनुग्रहने उनके निष्कलुष वासना-रहित चित्तको आलोकित कर दिया।' चित्रगुप्तजीने बताया—'अब हमारे विवरणमें केवल इतना ही है कि उनका परम पवित्र देह धरा देवीने अपनी मरुराशिमें सुरक्षित कर लिया है।'

जिसके सम्बन्धमें श्रुति कहती है—

'न तस्य प्राणाश्चोत्क्रामन्ति तत्रैव प्रविलीयन्ते।'

उस मुक्तात्माके सम्बन्धमें इससे अधिक विवरण चित्रगुप्तजीके समीप हो भी कैसे सकता है ?

———

श्रीकृष्ण - सन्देश
[आध्यात्मिक मासिक-पत्र]

श्रीकृष्ण-सन्देशका वर्ष जनवरीसे प्रारम्भ होता है। श्रीकृष्ण-सन्देश प्रतिमास ८० पृष्ठ पाठ्य-सामग्री देता है।

आप श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र' की सशक्त लेखन-शैलीसे इस पुस्तकके द्वारा परिचित हो रहे हैं। श्रीकृष्ण-सन्देशमें श्री 'चक्र' द्वारा लिखित 'श्रीकृष्णचरित' प्रति अङ्क ३२ पृष्ठ और उन्हीं द्वारा लिखित 'श्रीरामचरित' प्रति अङ्क ३२ पृष्ठ जा रहा है।

वार्षिक शुल्क— १० रुपया।

आजीवन शुल्क— १५१ रुपया।

सम्भव हो तो आजीवन ग्राहक बनें।

व्यवस्थापक—
श्रीकृष्ण-सन्देश
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
मथुरा-२८१००१

श्रीसुदर्शन सिंहजी 'चक्र' की अन्य पुस्तकें

भगवान वासुदेव—(श्रीकृष्णका मथुरा चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ४०२, सजिल्द, मूल्य १०

श्रीद्वारिकाधीश—(श्रीकृष्णका द्वारिका-चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ४००, सजिल्द, मूल्य १०)

पार्थ-सारथि (श्रीकृष्णका महाभारत-चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ४२८, सजिल्द, मूल्य १०)५

शिव-चरित—डिमाई आ०, पृष्ठ ४२८, सजिल्द, मूल्य ११)२

शत्रुघ्नकुमारकी आत्मकथा—
डिमाई आकार, पृष्ठ २१२, सजिल्द, मूल्य ७)५०

हमारी संस्कृति—डिमाई आ०, पृ० २६०, सजिल्द, मूल्य ७)२५

कर्म-रहस्य—डिमाई आकार, पृष्ठ १८४, मूल्य ४)००

आञ्जनेयकी आत्मकथा—(श्रीहनुमान-चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ३१२, सजिल्द, मूल्य ३)००

साध्य और साधन (साधना, भगवद्दर्शन, गुरुतत्व)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ३८४, सजिल्द, मूल्य १०)००

रामचरित भाग-१— सजिल्द, पृष्ठ ३८३, मूल्य १०)००

रामचरित भाग-२— सजिल्द, पृष्ठ २७२, मूल्य ८)२५

राम-श्यामकी झाँकी भाग-१ —पृष्ठ १६०, मूल्य २)००

श्यामका स्वभाव— पाकेट आकार, पृष्ठ ९६, मूल्य १)२५

हमारे धर्मग्रन्थ— पाकेट आकार, पृष्ठ ६७, मूल्य १)००

हिन्दुओंके तीर्थ-स्थान—पाकेट आ०, पृष्ठ २७४, मूल्य ३)५०

शिव-स्मरण— पाकेट आकार, पृष्ठ ८५, मूल्य १)२८

हमारे अवतार एवं देवी-देवता—
पाकेट आकार, पृष्ठ १०८, मूल्य १)५०

सांस्कृतिक कहानियां प्रत्येक भाग—
पाकेट आकार, पृष्ठ १६०, मूल्य २)००

अन्य प्रकाशन—

दो आध्यात्मिक महाविभूतियोंके प्रेरक प्रसंग—
पाकेट आकार, पृष्ठ १८८, मूल्य २)५०

प्रकाशन विभाग, श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवासंघ,
मथुरा-२८१००१ (उ० प्र०)